अंक-4, अगस्त-2020

नेहू ज्योति

हिन्दी प्रकोष्ठ
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग - 793022 (मेघालय)

नेहू ज्योति

हिन्दी प्रकोष्ठः पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय की पत्रिका

वर्ष :: 2019–20

संरक्षक

प्रो. श्रीकृष्ण श्रीवास्तव
एम.एस.सी, पी-एच.डी., कुलपति
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वद्यिावलय, शिलांग
ई-मेल - vcnehu@nehu.ac.in

संपादक मंडल

डॉ. जयनारायण नायक
एम.ए., पी-एच.डी., कुलसचिव, नेहू, शिलांग
ई-मेल - regtroffice@nehu.ac.in

प्रो. स्ट्रीमलेट ड्खार
एम.ए., पी-एच.डी.
संकायाध्यक्ष, मानविकी संकाय, नेहू, शिलांग
ई-मेल - sdkhar@rediffmail.com

डॉ. मदन मोहन सिंह
एम.ए., पी-एच.डी.
बुनियादी विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञानिक,
नेहू, शिलांग
ई-मेल - mms.nehu@gmail.com

डॉ. अरूण कुमार सिंह
एम.ए., पी-एच.डी.
सहायक आचार्य, विधि विभाग,
नेहू, शिलांग
ई-मेल - arunlaw69@gmail.com

श्री. बी. शिल्ला
एम.ए., बी.एड,
उप कुलसचिव, नेहू, शिलांग
ई-मेल - bmshylla21@gmail.com

श्री राजेन्द्र कुमार राम
एम.ए., हिन्दी अधिकारी,
नेहू, शिलांग

संपादक

प्रो. दिनेश कुमार चौबे
एम.ए., पी-एच.डी.
प्रोफेसर हिन्दी विभाग, नेहू, शिलांग
ई-मेल - dkcnehu76@gmail.in

परामर्श मंडल

प्रो. टी. बी. सुब्बा
नृ विज्ञान विभाग, नेहू, शिलांग

प्रो. बी. पांडा
अर्थशास्त्र विभाग, नेहू, शिलांग

प्रो. अमरेन्द्र कुमार ठाकुर
इतिहास विभाग, नेहू, शिलांग

प्रो. एच. असकरी
रसायनशास्त्र विभाग, नेहू, शिलांग

प्रो. दिलीप मेधी
हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी

प्रो. ओकेन लेगो
राजीव गांधी विश्वविद्यालय, दोईमुख, अरूणाचल प्रदेश

संपादन सहयोग
सुनील कुमार
ई-मेल - sunilbhu50@gmail.com

लेखक के विचारों से संपादक मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है ।

संपादक एवं प्रकाशक का पता
हिन्दी प्रकोष्ठ, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
प्रशासनिक भवन, नेहू परिसर,
शिलांग-793022 (मेघालय)
दूरभाष : 0364–2721331
इस पत्रिका का संपादन एवं प्रकाशन पूर्णतः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।
मूल्य : तीस रूपये मात्र
मुद्रणः एस. एन. इंटरप्राइज, शिलांग-793003

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय

पू०प०विवि परिसर, शिलांग-793022 (मेघालय)

North-Eastern Hill University

NEHU Campus, Shillong - 793022 (Meghalaya)

दूरभाष/T. No. : 0364-2550101/2721003/4 (कार्या.)

ईमेल : vcnehu@nehu.ac.in

प्रो. श्रीकृष्ण श्रीवास्तव

कुलपति

संदेश

इस वर्ष कोरोना की बीमारी के रूप में एक राष्ट्रीय आपदा आयी है । जिसने हमारे कार्यों एवं दैनिक जीवन को प्रभावित किया है । केवल भारत ही नहीं भारत समेत कई ऐसे देश हैं जहाँ पर इस वैश्विक महामारी का प्रकोप बहुत ही बुरी तरह से पड़ा । भारत भी इसी समस्या से जूझ रहा है लेकिन इसने अपने घुटने नहीं टेके । देश के प्रधान मंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी की अगुवाई वाली सरकार की सूझबूझ ने इस समस्या को काफी हद तक सम्हालने की कोशिश की है जिसका परिणाम आज हम सभी के सम्मुख है । समाज के प्रभावित होने से कई वर्ग प्रभावित होते हैं, इन्ही वर्गों में शिक्षा एवं साहित्य भी शामिल है । शिक्षा के क्षेत्र में वर्तमान सरकार ने क्रांतिकारी परिवर्तन किया जिसमें ई-पाठशाला, स्वयंम, दीक्षा पोर्टल, मूक (MOOC) ई-लर्निंग आदि सुविधाएं शामिल हैं । डिजिटेलाइजेसन की दिशा में ये महत्वपूर्ण कदम आज इस संकट की घड़ी में काफी प्रासंगिक सिद्ध हो रहे हैं । एक और महत्वपूर्ण सुधार मौजूदा शिक्षा मंत्रालय के द्वारा किया गया जिसे हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति -2020 के नाम से जानते हैं । इसके माध्यम से युवाओं को रोजगारमुखी बनाना एवं इसके साथ कई महत्वपूर्ण पहलू शामिल हैं ।

साहित्य समाज का दर्पण होता है । साहित्य में समाज की छवि प्रतिबिम्बित होती है । आज जब पूरा विश्व कोरोना महामारी की चपेट में है तो इसके प्रभाव से साहित्य कैसे अछूता रह सकता है । साहित्य धाराप्रवाह बहती हुई नदी की तरह है जो अबाध गति से निरंतर आगे बढता रहता है । इसका जीवंत प्रमाण इस वर्ष कठिनाइयों को दरकिनार करते हुए पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय के हिन्दी प्रकोष्ठ की वार्षिक गृह पत्रिका 'नेहू ज्योति' की चौथे अंक का प्रकाशन है। राजभाषा हिन्दी एवं पूर्वोत्तर भारत के समाज, संस्कृति, कला, साहित्य को समर्पित पत्रिका 'नेहू ज्योति' लगातार चौथे अंक को प्रदर्शित कर रही है । पत्रिका में शामिल लेखकों ने इसे काफी रूचिकर बनाया है जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं । इसके साथ-साथ अथक परिश्रम एवं प्रयास हेतु संपादक, संपादक मंडल एवं हिन्दी प्रकोष्ठ बधाई के पात्र हैं ।

पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु विश्वविद्यालय परिवार को ढेर सारी शुभकामनाएं ।

श्रीकृष्ण श्रीवास्तव

प्रो. श्रीकृष्ण श्रीवास्तव

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
पू०प०विवि परिसर, शिलांग-793022 (मेघालय)

North-Eastern Hill University
NEHU Campus, Shillong - 793022 (Meghalaya)

दूरभाष/T. No. : 0364-2550067/2721012 (कार्या.)

ईमेल : *regtroffice@nehu.ac.in*

डॉ. जय नारायण नायक

कुलसचिव

संदेश

वर्तमान समय में भारत विश्व समेत कोविड-**19** जैसे वैश्विक महामारी से जूझ रहा है जिससे वर्तमान समाज का प्रत्येक वर्ग प्रभावित है । इसका प्रभाव सभी तबकों, क्षेत्रों एवं कार्यप्रणालियों पर पड़ा है । इस विषम परिस्थिति में भारत के लोग ऊर्जा के साथ आगे बढते हुए सभी चुनौतियों को दरकिनार कर रहे हैं । आज से लगभग सौ वर्ष पहले ऐसी ही महामारी का सामना भारत के लोगो ने किया था और आज का समय है जब हम फिर से इस समस्या का सामना कर रहे हैं । समाज के सभी वर्गों के साथ-साथ उच्च शिक्षा पर प्रभाव काफी पड़ा लेकिन उच्च शिक्षा ने अपनी गुणवत्ता में गिरावट नहीं होने दिया ।

इस समय साहित्य की जिम्मेदारी और भी बढ जाती है । उच्च शिक्षण संस्थानों ने पठन-पाठन की दिशा में एक क्रांतिकारी परिवर्तन लाया जिसमें आनलाइन शिक्षा पद्धति, आनलाइन वेबिनार, शोध की आनलाइन मौखिकी परीक्षा आदि शामिल हैं । भारत के प्रधान मंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी ने देश के नाम संबोधन में आपदा को अवसर के रूप में बदलने की बात कही थी इस बात पर देशभर के लोगो ने अमल किया और आपदा को अवसर में बदलने के लिए प्रतिबद्ध होकर खड़े हुए । ''भोकल फार लोकल'' से लेकर "डिजीटल इंडिया" युग में प्रवेश करते हुए पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग के हिन्दी प्रकोष्ठ की प्रस्तुत पत्रिका 'नेहू ज्योति' इस वर्ष आनलाइन दिशा की ओर कदम अग्रसर कर रही है । यह बहुत बड़ा परिवर्तन है । आशा है कि इससे और भी लोग प्रेरित एवं प्रभावित होंगे ।

संकट की इस कठिन घड़ी में हिन्दी प्रकोष्ठ द्वारा राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के संवर्धन पर जोर दिया गया जिसके परिणामस्वरूप 'नेहू ज्योति' के चौथे अंक का प्रकाशन संभव हो सका । पत्रिका में कला, साहित्य, विज्ञान, विधि एवं समाज से जुड़े कई महत्वपूर्ण मुद्दों को बखूबी उद्धरित किया गया है । उम्मीद है यह पाठकों को काफी पसंद आएगा । पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु संपादक, संपादक मंडल, हिन्दी प्रकोष्ठ एवं इस अंक के सुधी रचनाकार धन्यवाद के पात्र हैं।

'नेहू ज्योति' वार्षिक हिन्दी पत्रिका के प्रकाशन पर विश्वविद्यालय परिवार के अध्यापक, अधिकारी, कर्मचारी एवं शोधार्थी-विद्यार्थी को हार्दिक शुभकामनाएं ।

जय नारायण

डॉ. जय नारायण नायक

संपादक की कलम से

भारत विविधता में एकता के प्रतीक का देश है। यहाँ बहुभाषिकता के साथ बहुसांस्कृतिकता भी है। इसमें बहुलता, बहुवचन के लिए पर्याप्त स्थान प्रारंभ से रहा है। देश में अनेक क्षेत्र, भाषा, शैली, रंग-रूप इस बहुलता का सत्यापन करते हैं। पूर्वोत्तर भारत इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। यहाँ अनेक प्रकार के वैविध्य में सौन्दर्य परिलक्षित होता है। यह क्षेत्र जैव वैविध्य के साथ भाषिक एवं सांस्कृतिक वैविध्य की दृष्टि से उल्लेखनीय है। भारोपीय परिवार, तिब्वती बर्मी एवं आस्ट्रो एशियाटिक(मनख्मेर) समूह की भाषाएँ प्रचलित हैं। इस दृष्टि से असमिया, बांग्ला, हिंदी, नेपाली, बड़ो, कारबी, खामती, कॉकबरक, न्यिशी, आदी, मिजोउ, मणिपुरी, विष्णुप्रिया मणिपुरी, गारो एवं खासी उल्लेखनीय हैं। आर्य, मंगोलीय एवं किरात संस्कृति की चर्चा की जाती रही है। ऐसे परिवेश में अध्ययन के लिए हमारा विश्वविद्यालय परिवार सतत् प्रयत्नशील रहता है। सभी को साथ लेकर सर्वजन हित के उद्देश्य से नेहू परिवार की "नेहू ज्योति" पत्रिका का चतुर्थ पुष्प आप सभी को अर्पित है।

आज के नोवल कोरोना महामारी के काल को अवसर में बदलने के लिए सभी लोग अपने-अपने क्षेत्र में प्रयासरत हैं। इस दृष्टि से यह पत्रिका भी इस बार ई-पत्रिका के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने जा रही है। इसके दोनों रूप इस बार पाठकों को उपलब्ध होंगे। इस दौर में नयी-नयी शव्दावली गढ़ी जा रही है। जैसे वेविनार, पृथकवास या संग रोध आदि। आजकल वेवसंगोष्ठी और ई-पत्रिकाओं की वाढ़ सी आ गयी है। इससे अव कोई वर्ग अछूता नहीं वचा है। किसान, व्यापारी, कर्मचारी, शिक्षक, विद्यार्थी सभी के लिए न्यू मीडिया या सोशल मीडिया का प्रयोग अनिवार्य होता जा रहा है।अव पहले के मोबाईल का विज्ञापन 'दुनिया मेरी मुट्ठी में' सचमूच सार्थक प्रतीत हो रहा है। इस तंत्र के द्वारा सब हस्तकमलवत की भाँति मोवाइलवत दृष्टिगत हो रहा है। सामाजिक दूरी इस माध्यम से भावात्मक सामीप्य में बदलती जा रही है। इस दृष्टि से पीढ़ीगत अंतर का लोप हो रहा है। क्या बच्चे, प्रौढ़, वृद्ध, कार्यरत या गृहिणी सभी अपना कुशलक्षेम, बाजार, पर्व-त्योहार के लिए उपहार विनिमय आदि ऑनलाइन से सम्पर्न्न कर रहे हैं। यह शुभ संकेत है, किंतु किसी भी संसाधन के उपयोग में सर्तकता वरती जानी चाहिए। यह विल्कुल सही उक्ति है 'सावधानी हटी दुर्घटना घटी'। युगानुरूप देशकाल के अनुसार उचित कार्य किया जाना आज का अभीष्ट है।

इस अंक के प्रकाशन में प्रोत्साहन एवं सहयोग के लिए में विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर श्रीकृष्ण श्रीवास्तव, कुलसचिव डॉ. जयनारायण नायक, विश्वविद्यालय के अधिकारी, कर्मचारी, संचालन समिति, संपादन मंडल एवं पूरे नेहू परिवार के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनके सहयोग से लगातार यह पत्रिका प्रकाशित हो रही है। में सभी लेखकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होने अपनी लेखनी से इसे मूर्त रूप प्रदान करने में अपूर्व सहायता की है।

हिन्दी माह सितम्बर में यह पत्रिका आप सभी को अर्पित करते हुए मुझे विश्वास है कि आपके सुझाव, स्नेह और शुभकामनाएँ बरावर मिलती रहेंगी।

एक हृदय हो भारत जननी।

प्रो. दिनेश कुमार चौबे
संपादक

विषय सूची

क्र.सं.	शीर्षक	रचनाकार	पृ.सं.
1.	कोविड-19ः एक वैश्विक महामारी	प्रज्ञा शुक्ला, प्रभाकर सिंह, प्रो. अरविन्द कुमार सिंह	11
2.	देख तमाशा पानी का	प्रो. भरत प्रसाद	14
3.	कोरोना काल में मानवाधिकार,चुनौतियां एवं कानून	डॉ. अरूण कुमार सिंह	19
4.	कोरोना काल की कविताएँ	प्रोफेसर उमाशंकर अग्रवाल	22
5.	लोक संस्कृति और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम	डॉ. आदित्य विक्रम सिंह	25
6.	स्त्री, बूढ़ी माँ	निर्मला वर्मा	32
7.	पूर्वोत्तर में लोक-रंग के विविध पक्ष	सुनील कुमार	33
8.	महान देश के आँचल में	एह्सिङ खिएवताम	38
9.	लालमुनिया के बहाने दरकती जमीन का सच	आलोक सिंह	39
10.	कब्ज : कारण और निवारण	डॉ. मदन मोहन सिंह	44
11.	पूर्वोत्तर भारत के संत एवं समाज सुधारक महापुरूष श्री माधवदेव	अजित कुमार	46
12.	हिन्दी एवं मातृभाषा : वैचारिक पृष्ठभूमि	राजेन्द्र कुमार राम	49
13.	संत रविदास का जीवन-दर्शन	डॉ. अनुराग शर्मा	56
14.	लोक साहित्यः अध्ययन की दिशायें एवं महत्व (भोजपुरी लोक साहित्य के संदर्भ में)	कुलदीप सिंह	61
15.	लोग क्या कहेंगे (लोक कथा)	प्रो. दिनेश कुमार चौबे	69

कोविड-19: एक वैश्विक महामारी

✍ प्रज्ञा शुक्ला, प्रभाकर सिंह,
प्रो. अरविन्द कुमार सिंह

कोरोना वायरस (कोविड-19) महामारी की वजह से भारत समेत लगभग पूरी दुनिया एक अभूतपूर्व संकट का सामना कर रही है। इसके प्रसार को रोकने के लिए जरूरी है कि हमारे पास सही जानकारी हो और हम सावधान तथा जागरूक रहें। अगर हम, विश्व स्तर पर आंकड़ों की बात करें तो **9** अगस्त तक, पुरे विश्व में **19,806,285** मामले सामने आ चुके हैं, **729,591** लोगों की मौत हो चुकी हैं। एक अच्छी बात यह है की **12,722,931** (**64.23**%) लोग ठीक भी हो चुके लेकिन अभी भी सक्रिय मामलों की संख्या **6,353,763** है। वही अगर हम अपने देश क आंकड़ों की बात करे तो अभी तक कुल मामले **2,153,010** हैं **43,379** लोगों की मौत हो चुकी है जबकि कुल ठीक हो चुके लोगों की संख्या **1,480,884** (**68.80**%) है। देश में अभी तक कुल सक्रिय मामले **628,747** हैं। इन आंकड़ों से पता चलता है की, विश्व की तुलना में हमारे देश में कोरोना को मात देने वालों की संख्या **57.79**% है जो की दुनिया भर के कुल ठीक होने वाले मरीजों (**64.23**%) से कहीं अधिक है, यह हमारे देश के लिए एक अच्छी खबर है।

कोरोना वायरसः संक्षिप्त परिचय

नावेल कोरोना वायरस एक अति तीव्र श्वसनपरिलक्षण (सार्स-कोव **2**) एक प्रकार का आर.एन. ए. विषाणु है, जो की कोरोना वायरस डिजीज-**19** (कोविड-**19**) के लिए उत्तरदायी है। इसका आनुवंशिक पदार्थ प्रोटीन अणुओं के बने हुऐ एक मोटे कवच से संरक्षित रहता है । प्रोटीन कवच वायरस की संख्या में वृद्धि अथवा इसकी नई प्रतिलिपियों के बनाने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं । कवच के नष्ट हो जाने के पश्चात् इनकी संख्या में वृद्धि रुक जाती है । वैज्ञानिक इसके प्रोटीन को लक्षित करते हुऐ विभिन्न प्रकार की औषधियों एवं वैक्सीन के निर्माण हेतु निरंतर कार्यरत हैं। कोरोनावायरस मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं अर्थात्य ̇, α, β, γ, δ. α और β प्रकार कोरोनावायरस स्तनधारियों को संक्रमित करने में सक्षम हैं, जबकि ?, और क- कोरोनावायरस पक्षियों को संक्रमित करते हैं। नावेल कोरोनावायरस- **19** द्वितीय न्यूमोसाइट्स और सिलिएटेड ब्रोन्कियल उपकला कोशिकाओं को एंजियोटेंसिन-परिवर्तित एंजाइम-**2** (ऐ.सी.ई-**2**) के माध्यम से मनुष्य के श्वसन तंत्र में प्रवेश कर जाते हैं । ऐ.सी.ई-**2** मनुष्यों के निचले श्वसन पथ में पाया जाता है, जिसे नावेल कोरोनावायरस -**19** के लिए संग्राहक के रूप में माना जाता है । इस घातक वायरस का प्रसार गंभीर मुद्दा है और इसे चिकित्सकीय रूप से सिद्ध रोगनिरोध और चिकित्सीय रणनीति की आवश्यकता है। इस महामारी के निवारण हेतु व्यावहारिक योजना एक ऐसी जरूरत

है जो समकालीन वैज्ञानिक अध्ययन, आयुर्वेद क्लासिक्स और समान नैदानिक सेटिंग्स पर हमारे अनुभवात्मक ज्ञान पर निर्भर करती है।

रणनीतियाँः

१. प्रतिरोधक क्षमता क्या हैः संक्रामक बीमारी से अप्रत्यक्ष सुरक्षा तब होती है जब एक बड़ी आबादी किसी संक्रमण से प्रतिरक्षित हो जाती है, चाहे वह पिछले संक्रमण के आधार पर शरीर में नयी छमता का विकास हो या टीकाकरण के रूप में विषाणुओं के विपरीत प्रतिरोधक क्षमता का विकास हो। इस प्रकार की प्रतिरोधक क्षमता को सामूहिक (झुंड) प्रतिरक्षा कहा जाता है। फिलहाल, हमारे पास इस वायरस के खिलाफ कोई विकसित वैक्सीन नहीं है, लेकिन हम रोजाना, गुडुची क्वाथ, च्यवनप्राश, तुलसी, पारिजात, चिरायता, लहसुन, अदरक, नींबू के आदि के सेवन से अपनी प्रतिरक्षा प्रणाली को बेहतर बना सकते हैं।

२: बचाव हेतु मुख्य बिंदुः औषधीय एवं - गैरऔषधीय दोनों प्रकार की योजनाओं को शामिल करने की आवश्यकता है। हमारी पारंपरिक प्रथाओं यानी आयुर्वेदिक जड़ी बूटियों जैसे नीम के पत्तों, अजवाईन के बीज, लोबान, हल्दी पाउडर, लहसुन आदि के उपयोग से रहने की जगह को धूमन विधि द्वारा निर्जमीकृत करना। इन बूटियों का उपयोग उपलब्धता के अनुसार किया जा सकता है। श्वसन तंत्र पर प्रमुख प्रभाव रखने वाली रसायना (च्यवनप्राश, ब्रह्म रसायण, या अमृत भल्लाक्ष) के माध्यम से समुदाय आधारित स्वर्ण प्राशन और द्रव्य रोगनिरोध क्षमता के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। रसायना रोगों के खिलाफ प्रतिरक्षा प्रदान करता है, और साथ ही एंटीऑक्सिडेंट जीवाणु एवं विषाणु प्रतिरोधी के रूप में कार्य करता है तथा मनुष्य में प्रतिरोधक क्षमता को सामान्य से अधिक मजबूत बनाने में सहायक है। यह वायरल आरएनए संश्लेषण (नई प्रतिलिपियों का बनना) को भी बाधित कर सकता है। गैरऔषधीय योजना के अंतर्गत हमें सूर्य के प्रकाश में सुबह एक घंटे जरूरी रूप से व्यतीत करना चाहिए। आज के समय में बच्चे धूप से दूर होते जा रहे हैं परिणाम स्वरुप उनकी प्रतिरोधक क्षमता ग्रामीण क्षेत्र के बच्चों की तुलना में कम होती जा रही है। प्राणायाम एवं अनुलोम-विलोम जैसे व्यायामों को दैनिक दिनचर्या का हिस्सा बनाना चाहिए इससे स्वशन तंत्र मजबूत बनता है।

३: वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं सुझावः हम नावेल- कोरोनावायरस के खिलाफ दवाएँ एवं विभिन्न प्रकार के नैनोकण तैयार करने के लिए तैयार हैं, लेकिन इससे पहले हमें वायरल स्पाइक प्रोटीन के खिलाफ लक्षित औषधीय जड़ी बूटियों के उपयोगी माध्यमिक चयापचयों के

साथ-साथ कुछ आणविक डॉकिंग और सिस्टम डायनामिक्स सिमुलेशन अध्ययन करना चाहिए। यह हमें दवा की क्रिया से संबंधित अधिक विशिष्ट ज्ञान प्रदान करेगा और समय / प्रयासों / जनशक्ति के अपव्यय को प्रतिबंधित करेगा।

४: उद्योग की प्रासंगिकताः औषधीय महत्व वाले पौधों के विस्तारीकरण एवं व्यवसायीकरण वर्तमान समय की आवश्यकता है और यह पादप ऊत्तक संवर्धन (प्लांट टिशू कल्चर) की विभिन्न तकनीकियों के माध्यम से संभव हो सकता है। माइक्रोप्रोपगेशन (प्रयोगशाला में पौधे के विभिन्न भागों से नये पौधे तैयार करना), महत्वपूर्ण चयापचयों का संवर्धन (बैच कल्चर), कलम तैयार करना जैसी तकनीकियां विस्तारीकरण के लिए उपयुक्त हैं। व्यवसायीकरण के संबंध में टिशू कल्चर-आधारित उद्योगों को आगे बढ़ना चाहिए और सर्वश्रेष्ठ योगदान देना चाहिए। इसके अलावा, मानव कल्याण के लाभ के लिए प्रौद्योगिकी हस्तांतरण / समझौता ज्ञापन को सामान्यीकृत किया जाना चाहिए। एक और अच्छा विकल्प घर-घर वृक्षारोपण अभ्यास हो सकता है, जिसे हमें ब्लॉक स्तर पर लोगों के बीच लाना चाहिए तथा संम्बन्धित विषय की लिए जागरूक करना चाहिए। सरकारी संगठनों / अनुसंधान संस्थानों को भाग लेना चाहिए और विविध कार्यक्रमों / गतिविधियों के माध्यम से जागरूक करना चाहिए।

देख तमाशा पानी का

✍ प्रो. भरत प्रसाद

यह पानी भी न कमाल का मायावी है भाई । पूछो तो कहाँ नहीं घुसा हुआ है ? जीव में, जानवर में, मिट्टी और पत्थर पेड़-पालो, बंजर-धरती, आकाश यहाँ तक कि हवा का भी पीछा नहीं छोड़ता । होगी हवा उड़नछू , पानी उसका भी बाप है । वैसे पानी है बैरंगा, मगर इसके बगैर किसी रंग का अर्थ नहीं । लाल, हरा, नीला, पीला, यहाँ तक कि काला रंग भी पानी का बहतर प्यासा है । पानी को न जाने किस गोबर बुद्धि ने कहा बेस्वाद, उसके आगे तो सारे स्वाद बौने हैं, नगण्य, बेअर्थ ।

पानी पानी में जमीन-आसमान का फर्क है । एक पानी है तो आदमी-आदमी है । एक और पानी किसी को चढ गया तो सब किया धरा मिट्टी में मिला । एक पानी नजरों में उठा देता है, मगर दूसरा पानी सबकी नजर से गिरा देता है । एक पानी नजरों में उठा देता है, मगर दूसरा पानी सबकी नजर से गिरा देता है । एक पानी जीवन, तो दूसरा पानी मौत । एक की प्यास जगा देती है तो दूसरे की प्यास बेदम कर देती है ।

जहाँ देखो वहीं जोर है पानी का। कोई पानी पीकर मरा जा रहा है कोई पानी के बिना । कोई उसे पी-पीकर रो रहा है, कोई उसके बगैर । एक पानी मिल जाए तो रोम-रोम जाग उठता है, दूसरा पानी चढ़ जाए तो शरीर में अन्धकार छा जाता है ।

तो भइया पानी की विचित्र कहानी उसी की जुबानी सुनिए-

“वैसे तो मुझे लाल पानी, ठर्रा, पाउच जैसी अनेक उपाधियों से विभूषित किया गया है- मगर इनमें जो मुझे सबसे कर्णप्रिय, सुमधुर लगता है - वह है- दारू । यही शब्द मेरी प्रकृति के अनुसार फिट्ट बैठता है । मैं पृथ्वी के कोन-कोने में ईश्वर, माया, छाया की तरह व्याप्त हूँ । ऐसा कोई महापुरूष शायद ही मिले जिसकी जीभ पर कम से कम एक बार मैंने नृत्य न किया हो, ऐसी आँखें शायद ही मिलें जिनको हमने अपने जादू से लाल न किया हो । जो मेरे आशिक है उनको और जो विशुद्ध दुश्मन हैं उनको भी मैं बतरह याद आती हूँ । आदमी के दिलो-दिमाग पर मेरा सिक्का चलता है । बड़ा गजब असर है मेरा-दूर से ही बदबू मारती हूँ,मगर मेरे करोड़ो भक्त आँखें मूद कर गटक जाते हैं । स्वाद के मामले में मेरी चाल परले दर्जे की टेढ़ी, मगर मेरे-चपाटे मेरे आगे अमृत भी ठुकरा देते हैं । इतना ही नहीं, मेरा रूप - रंग देखने में भी कुछ खास नहीं मगर मेरी सूरत का जादू मेरे पिछलग्गुओं के सिर चढ़कर बोलता है ।

यह मै ही हूँ जिसकी चाहत का नशा उतना ही अद्वितीय है, जितना वेदों-पुराणों-

उपनिषदों के समय था । दुर्योधन और रावण जैसों के सिर हमारे लिए नृत्य का रंगमंग होते हैं । अहंकारियों, आत्ममुग्धों, मियां मिट्ठुओं का सिर मेरे लिए सबसे आरामदायक जगह होती है, क्योकि यहाँ प्रार्याप्त खाली जगह है । ज्यादा सोचने वाले,करूणा में डूबे हुए, सीधे-साधे लोग मुझे रत्ती भर पसन्द नहीं आते ।जब देखो तब मेरी खाल खींचते हैं जहाँ देखो तहाँ मेरी निन्दा फैलाने लगते हैं । इसीलिए मैंने भी ऐसे ठोस महाशयों को ‘ऑउटडेटेड’ सिद्ध करने की अचूक चाल चली है । इन्हें पोंगापंथिया कूप मण्डूक में से कुछ घोषित करवाकर ही दम देती हूँ । कई तो इन उपाधियों से डर कर मेरे आगे सरेंडर कर देते हैं. कुछ ज्ञानी-महात्मा मुझसे बचने का नाटक खेलते हैं, मगर मैं भी कुछ कम कहाँ ? स्वार्थ के व्यापारों का ऐसा मायाजाल रचती हूँ कि इनको भी धूल चटाने की तर्ज पर पानी चटा देती हूँ । अरे तो बूझ ही लीजिए कि मैं विचित्र बला हूँ । मनमोहिनी कुछ ऐसी कि बिना बुलाए सब नाचीज की तरह खिंचे चले आते हैं । अपनी सही जगह से मियाँ एक कदम फिसले नीचे आए, डगमगाए कि तुरन्त उनके समीप मैं पहुँच जाती हूँ । मेरा असली पता ठिकाना आदमी के नस-नस में बैठी भोग-वासना है, कामातुरता है, मक्कारी, झूठ, फरेब, चालबाजी, दो मुँहेपन और भ्रष्टाचार है । जिस तरह गटर के कीड़े का प्राण कीचड़ में बसता है, ठीक वैसे ही मेरी आत्मा आदमी के समस्त अवगुणों में । ईमानदार और गुद्दार टाइप के लोग मुझे फूटी आँखों नहीं सुहाते। मंत्री, अफसर, शिक्षक, विद्वान, मठाधीरा, साधक, आराधक, नर्तक, गीतकार, नेता, अभिनेता, मालिक, नौकर, युवा, बुर्जुग, औरत, मर्द बताइए तो ऐसा कौन है जो मुझसे बच गया हो ? मंत्री का हो, किसी क्रांतिकारी, शान्तिकारी, भ्रान्तिधारी पार्टी-शार्टी का, मेरे बगैर अगली सुबह उठने की कल्पना नहीं कर पाता । यकीन न आए तो लीजिए न नमूना । एक लम्बोदर काया वाले केन्द्रीय मंत्री हिन्दू संस्कारो वाली पार्टी के थे । दिन भर मंचों पर कटहा कुत्तों की तरह विरोधी पार्टी के नेताओं, उनकी नीतियों, प्रीतियों पर भौं-भौं करते और रात चढ़ते ही मुझे तीन-चार सील पैक बोतलों में मांगा लेते । मुझे किसी बात की शरम नहीं, हलक में उतरते ही तन-बदन में मीठे जहर की तरह फैलती हूँ । मंत्रियों का अंग-अंग तो कुम्भकर्णी काया का प्रतिरूप होता है, मुझे अपना जलवा बिखने में कुछ वक्त तो लगता है, मगर पेट में अपनी जड़े जमा लेने के लिए बाद में सीधे दिमाग पर धावा बोलती हूँ । उनकी दिमाग की बत्ती पहले से ही धुककुकायी रहती है- मुझे पाते ही परम गुल्ल हो जाती है । फिर कब्जे में लेती हूँ आँखे- मेरे असर के मारे उलट जाती हैं दिनों बत्तियां । फिर तो मंत्री टूटहर सांड बन जाता है, नोंचने-खाने वाला पक्का जानवर।जिसे औरत की तलब पागल कर देती है । जो दूसरे तो क्या, खुद को भी गाली देने से नहीं चुकता । उसकी जुबान का व्याकरण बिगाड़ कर रख देना केवल मेरे बूते है - केवल मेरे । भारतवर्ष तो क्या समुचे भूमंडल के आला, मझोले, जूनियर,असिस्टेंट या लघु अधिकारी मेरे अखण्ड मायाजाल के दास हैं । दास न कहिए-भक्त,नहीं, ‘नहीं’ भक्त मत कहिए आशिक । स्पंजी कुर्सी में धंसने और आइने की नांई चमचमाती मेज के सामने बैठते ही प्रत्येक

अफसर में ईश्वर होने का आत्मज्ञान सिर उठाने लगता है । फिर तो हुई न मेरी जगह पक्की । जमीन से पाँव उठे, सच्चाई से नजरें फिरी,खुद को पहचानने का अन्धापन छाया कि मेरा जादू सिर चढ़ा । आधा जिन्दा, आधा मुर्दा, आधा आदमी, आधा बेआदमी,आधा प्रकट आधा छिपी, आधा उठी और आधा गिरी हुई महान विभूतियाँ को भारतीय अफसर कहा जाता है। मेरी मौजूदगी के लिए एक चौथाई पशुता या मुट्ठीभर अंधकार काफी है - ये तो भरपूर बेआदमी और अंधकारी जीव होते हैं । तो जब कोई चाकलेटी मॉडल वाली अटैली या प्रेमपत्र जैसे रंगीन लिफाफे में लक्ष्मी जी भरकर महाशय की आत्मा तृप्त करता है तौ मैं शर्तिया आसन जमा लेती हूँ अफसर में । पद के स्तरानुसार जैसे मेरी ब्रांड ऊपर उठती है, वैसे ही मेरे धावा बोलने का ग्राफ । एक नहीं, दो नहीं सौ-सौ बार अपने इशारे पर नाचती हूँ - इन बच्चों को । चार घूंट मारी कि शरीर बहकने लगी, आँखें आला दर्जे के हसीन सपने देखने लगीं । हूबूहू मंत्रियों की तरह इन्हें भी स्त्री की बेहिसाब भूख लगती है । मेरा जादू कुछ ऐसा छाता है कि इनकी आँखें उम्र का फासला भूल जाती हैं - फिर तो चाहे बीस साल की महिला कर्मचारी हो, माई चेहरे-मोहरे जैसी संस्थान की चपरासिन या सज्जना की प्रति मूर्ति बेटीनुमा सीक्रेटरी, सबको हासिल करने की सनक तूफान बन जाती है । लाखों-करोड़ो रमक वाली योजनाओं के सौदागर, ईश्वर यही अफसर मेरे कारण बिक जाते हैं । सुपर ब्रांडेड बोतल में पैक करके कोई मुझे सौंप दे और अपने काले-रक्तिम, अन्धकारी कारनामों की सरकारी सर्टिफिकेट इन महापुरूषों से हासिल कर ले । मेरे असली असर की दशा में ये अपनी बेटियों और बहुओं को कितनी हसीन निगाहों से देखते होंगे, यह मेरे सिवाय कोई नहीं बता सकता ।

अब एक राज की बात बताऊँ ? मसलन उर्दू साहित्य, फारसी साहित्य, अंग्रेजी साहित्य । इसी तरह भारत देश में सदियों से नदी की तरह बहता चला आ रहा है हिन्दी साहित्य, आज वह किसी और नदी में बह रहा है । मतलब गये न .... ! इस रंगीन नदी का न कोई ओर है मैं, जो भी साहित्य में श्रीगणेशाय नमः करता है वह मुझमें हाथ धो लेता है । मजा यह कि मेरे बगैर साहित्य बेमजा है ।यह मैं ही हूँ जो अपने लहराते, मचलते, उद्दाम आगोश में हजारों हिन्दी साहित्यकारों को लिए - दिए मुद्दतों से बह रही हूँ । नंगे होकर कूदने वाले नये- नये बच्चे मुझमें कुछ ज्यादा ही छपकोइया मारते हैं, बल्लियों उछलते हैं, शोरगुल मचाते हैं । जैसी नियत वैसी बरक्कत,जैसी शरीर वैसी छाया,जैसी जुबान वैसा आदर । हिन्दी साहित्य में कोहराम मचाने वाले ऐसे जलजीवी बच्चों की आमद रोज-जोर बढ़ रही है । अरे छोड़ो इन बच्चों को, जो बुजुर्ग हैं,महान हैं, परम विद्वान, प्रसिद्ध, मूर्धन है, युगान्तकारी हैं वे तो मुझमें कूदते ही बच्चों बच्चा बन जाते हैं । उमिर कुछ अधिक अस्सी साल की, मगर कसम है जो साल भर में २५३ दिन ११ घण्टा, ४५ मिनट और ६३ सेकेण्ड मेरे बगैर जी पाए हों । मंत्री, अफसर और साहित्यकार तीनों में

एक ही विलक्षण बनाने के लिए इन चामदासों ने अपने गिरोह बना लिए हैं । कोई समारोह होगा तो मेरी आरती, कोई कोर बैठक होगी तो मेरी पूजा, कोई क्रांतिकारी साहित्यिक योजना बनेगी तो मेरे नाम की जय-जयकार । कई बार तो दम पर दम के आयोजनों के पीछे मुझे ही छक पीने की तमन्ना लहलहाती है । अब हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध, पुरस्कार,प्रशंसा,स्थापना, अमरता मेरा अमृतापान किए बगैर नहीं मिलती ।बड़े-बड़े कलमेश्वरों को अपनी चर्चा के लिए पटाने में सबसे कारगर हथियार मैं ही हूँ ।

पानी-पानी युद्ध :

यहाँ हमने जिन-जिन रसजीवों के उदाहरण दिए हैं वे तो बस सैम्प समझो, एक झलकी । वरना तो मेरी घुसपैठ कोने-कोने में है । मेरा एक बड़ा भाई है, जिसकी इस मृत्यु लोक में हैसियत ईश्वर से बाल बराबर भी कम नहीं, बल्कि उससे भी बेसी । आदमी उसे जीवन कहते हैं, क्योंकि उसके बगैर जीवन कोरी कल्पना हैं । मैं हूँ तो उसकी सगी बहन मगर जानी दुश्मन की तरह अटस है उससे । रहस्य का पर्दा उठा ही दूं- यह है पानी, जिसे जल, नीर, वाटर इत्यादि नामों से बुलाया जाता है । इसमें न में जैसी रंगीनिय, न नशीलापन, न आकर्षण- फिर भी पृथ्वी पर इसकी इज्जत मेरे से कई गुना अधिक है और यही मेरी ईष्या का सबसे बड़ा कारण है । फसलों की जड़ो इसका स्पर्श पाते ही प्राणमय हो जाती हैं । जानवरों की हलक में उतर कर यह उनका रोवां- रोवां हरियर कर देती है । कीमत इस कदर कि यह मान-सम्मान से लेकर प्राण के प्राण का प्रतीक बन चुकी है । कौन कहे कि मैं नहीं घुसी हूँ इसमें, मगर इसको मेरी कोई जरूरत नहीं । उल्टे मुझे ही इसकी बार-बार जरूरत पड़ती है । उफ्फ् ! यह शीतल इतना कि जैसे ताजा नरम मिट्टी, पारदर्शी इतना जैसे करूणामय हृदय । जिसके घर में यह हैं वहाँ में नहीं, जहाँ मैं हूँ वहाँ इसका मूल्य घट जाना तय ।

अपने शिकार की तलाश में घूमते-घामते मैं एक बुढ़िया के पास गयी तो देखती क्या हूँ कि उसकी आँखों में यह समुद्र बनी हुई है । खटिया के नीचे सिरहाने यूं लोटे में लबालब बैठी है जैसे गंगाजल । बुढ़िया खाना खाती है तो पहले पानी से शुद्ध होकर । हवा की पीठ पर सवारी करके पहुँची उजाड़ बस्तियों के मंजर में । इन दिनों बुंदेलखण्ड, विदर्भ की चर्चा बड़ी जोरों पर है- वहाँ देखती क्या हूँ कि पानी कुँओं के पेट में चिपक गया है । चांदी जैसी उसकी झलक पाने को गरीब गुरबा गंवई लोग झुक गये हैं । कई गाँवों में हजारो गायें पानी की कल्पना करते-करते थक गई हैं, और अपने आंसुओं को जीभ से चाट-चाट कर विदा रही हैं । कई घरों में तो पानी की टंकियों पर ताला जड़ दिया गया है, मानो उसमें सोना सुरक्षित हो । कई दिनों से पानी को

तरस्ता एक किसान रात में चोरी करते पकड़ा गया ।अब क्या बताऊँ कि घर-घर में पानी की यह ईश्वरनुमा इज्जत देखकर मेरे अंग-अंग में आग लग जाती है । काश, मुझे भी यह इज्जत मिलती । काश, मुझे भी पानी की तरह सबको जीवन देने का स्वभाव मिला होता । मगर मैं यह कैसे भूल जाऊँ कि मेरी आदत ही है छीनना । मैं किसी को कुछ दे भी सकती हूँ यह मेरी कल्पना से परे है । किसी नौजवान के पास गई तो उससे सारी ईमानदारी ।औरत के करीब पहुँची तो उसे डायन बना देती हूँ । यदि पुरूष के पास पहुँची तो उसे अंधकार में सड़ता हुआ मुर्दा ।

इसीलिए आदतन मेरी उस पानी से जन्मजात दुश्मनी है और रहेगी । मैं उसकी अस्तित्व मिटाने का खेल खेलती हूँ । लगेगा बड़ा अजीब, मगर सच है कि युगों से मेरे ही परम शिष्यों ने पानी वालों पर जुल्म ढाए हैं । जो पानी वाला है वह मेरा शत्रु है और जो मेरा वाला है वह पानी वालों का । मैं जिस किसी के सिर चढ़ी उसके अन्दर-बाहर का सारा सिस्टम बिगाड़ कर ही दम लिया । मेरी तमन्ना है कि पानी को दुनिया से बेदखल कर दूँ और उसकी जगह मैं राज करूँ । चाहती तो यह भी हूँ कि छोटा हो या बड़ा, अच्छा हो या बुरा, अमीर हो या गरीब, सरनाम हो या बेनाम, दुखी हो या सुखी, पराजित हो विजेता सबके सब मेरे आगे नतमस्तक हो जायँ, मेरी माया का लोहा मान लें, लोट जायँ मेरे चरणों में । आश्चर्यजनक रूप से मैं अपने मकसद में परम कामयाब भी हूँ । मगर पानी,पानी, पानी.... मुझे पानी की जगह पानी है । मुझे उसका हक छीनना है, मुझे उसको बेदखल करना है । इसीलिए हजारों सालों से अपनी माया के सौ-सौ रूप धारण कर खतरनाक से खतरनाक खेला रही हूँ,खेलती रहूँगी । जब तक पतन में नृत्य करने वाला यह मानव जीवित रहेगा तब तक मेरा कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता । इसीलिए पृथ्वी के इस ईश्वर से उसकी गद्दी छीनने की मेरी लड़ाई जारी है, दिन रात जारी है । मेरी जय हो..... जय हो ।

कोरोना काल में मानवाधिकार : चुनौतियां एवं कानून

✍ डॉ. अरूण कुमार सिंह,
विधि विभाग, नेहू

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो कि एक मानव को मानव होने के कारण उपलब्ध होते हैं । यह अधिकार हर व्यक्ति को बिना, जाति, धर्म, नस्ल जन्म स्थान या लिंग के भेदभाव के उपलब्ध होते हैं । भारत वर्ष एक लोकतांत्रिक देश है और सरकार या यह कर्तव्य है कि यह अपनी जनता की देखभाल एवं सुरक्षा बिना किसी भेदभाव एवं पक्षपात के करे । हमारा देश भारत सयुंक्त राष्ट्र संघ का सदस्य है जिसके कारण उसके कुछ अन्तर्राष्ट्रीय कर्तव्य एवं दायित्व भी है । अतः मानवाधिकारकी सार्वभौमिक घोषणा पत्र **1948** में जो प्रावधान मानवाधिकार के संरक्षण हेतु उपलब्ध है, भारत भी उसे मानने के लिए बाध्य है । केवल घोषणा-पत्र ही नहीं अपितु इस घोषणा पत्र से सम्बन्धित दो प्रसंविदायें सिविल एवं राजनैतिक प्राधिकारों से सम्बन्धित प्रेसंविदा **1996** और सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक प्राधिकारों से सम्बन्धित प्रसंविदा **1996** का हस्ताक्षरित देश होने के कारण उसमें उपलब्ध मानवाधिकारों के संरक्षण से सम्बन्धित प्रावधानों को अपने देश में लागू करने हेतु बाध्य है । उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुये हमारे संविधान निर्माताओं ने सिविल एवं राजनैतिक अधिकारों से सम्बन्धित प्रावधानों को संविधान के भाग तीन में अनुच्छेद **14** से **35** तक भौतिक अधिकारों के रूप में उपबन्धित किया है । इतना ही नहीं सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक प्राधिकारों को संरक्षित करने हेतु भाग चार में अनुच्छेद **36** से लेकर **51** तक में राज्य के नीति निर्देशक तत्व के रूप में प्रावधानित किया है । भाग-चार में जो भी अधिकार उपबल्ध है उनका उल्लंघन होने पर पीड़ित व्यक्ति सीधे उच्वतम न्यायलय में याचिका प्रस्तुत कर सकता है । लेकिन जो मानवाधिकार भाग चार में उपबन्धित है उनका उल्लंघन होने पर न्यायाल्य में पालन हेतु पीड़ित व्यक्ति नहीं जा सकता है । यहाँ पर एक बात ध्यान देने योग्य है कि भाग तीन में उपबन्धित मौलिक अधिकारों पर भी युक्तियुक्त निर्बंधन लगाया जा सकता है, और ये अधिकारों अनिर्बिन्धित नहीं होते हैं । जैसे अनुच्छेद **19**(**1**) के अन्तर्गत एक व्यक्ति को भारत में कहीं भी भ्रमण करने का अधिकार है परन्तु अनुच्छेद **19**(**2**) में निर्बन्धित का प्रावधान भी है । संविधान का अनुच्छेद **21** जो जीने के अधिकार की बात करता है उस पर भी विधि द्वारा उपबन्धित प्रक्रिया के तहत रोक लगाई जा सकती है ।

कोरोना काल (कोविड **19**) जो कि एक महामारी का समय है इस समय पर लोगों के मानवाधिकार को संरक्षित करने हेतु कुछ विधियों में प्रावधान किया गया है । इनमें कुछ सामान्य विधियों में भारतीय दण्ड संहिता **1960**, दण्ड प्रक्रिया संहिता **1973** है तथा विशेष विधियो में

महामारी रोग अधिनियम, **1860** (Epidemic Diseases Act. **1897**) तथा आपदा प्रबन्धन अधिनियम **2005** (Disater Management Act. **2005**) हैं । जब कभी इस कोरोना काल में किसी भी क्षेत्र में उपद्रव हुआ है और वहां पर कर्फ्यू या धारा **144** लगाना पड़ा तो वहाँ पर दण्ड प्रक्रिया संहिता (R.P.C.) के अन्तर्गत कार्यवाही की जाती है तथा जो भारतीय दंड संहिता, **1860** (Indian Penal Code **1860**) के अन्तर्गत दण्डनीय होती है । परन्तु किसी महामारी के समय जैसे कि कोरोना काल के समय क्या कदम सरकार को उठाना है यह सरकार (केन्द्र या राज्य) के विवेक पर होता है ।, इसके लिये महामारी रोग अधिनियम **1897** में प्राधिकृत किया गया है । यद्यपि कि यह एक छोटा अधिनियम है और उसमें मात्र चार धाराऐं है इस अधिनियम की धारा 2.2(A), के अन्तर्गत राज्य को तथा केन्द्र सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि महामारी के समय रोग को फैलने से रोकने के लिए क्या उपाय किये जायें या क्या विनियम बनाया जाये । इससे सम्बन्धित कदम उठाये । यदि कोई भी रेगुलेशन (विनयम) सरकारों द्वारा बना दिया गया है तथा कोई भी व्यक्ति उसका उल्लंघन करता है तो उसे महामारी अधिनियम की धारा **43** के अन्तर्गत दण्ड देने का प्रावधान है । इतना ही नहीं यह अधिनियम धारा **4** के अन्तर्गत उन व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान करता है जो इस रोग के फैलाव को रोकने में लगे है, जैसे डाक्टर नर्स,अधिकारी पुलिस अधिकारी एवं कर्मचारी आदि ।

इस अधिनियम का उल्लघंन करने वाले व्यक्ति को जो दण्ड दिया जायेगा वह भारतीय दण्ड संहिता की धारा **188** के अंतर्गत अधिनियम **1897** के साथ-साथ आपदा प्रबन्धन अधिनियम, **2005** का भी इस महामारी को रोकने में उपयोग किया गया ।इसी अधिनियम के अंतर्गत इस महामारी को राष्ट्रीय आपदा घोषित किया गया । देश या प्रान्त में जो लाकडाउन लागू किया गया वह इसी अधिनियम की धारा 6.2.(1) के अंतर्गत किया गया । अधिनियम की धारा **6** के अंतर्गत राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन अधिकारी यह नीति या योजनायें बनाते है कि किसी आपदा को कैसे रोका जाये या फिर इसके विस्तार पर कैसे रोक लगायी जाये । अधिनियम के अंतर्गत व्यवस्था केन्द्र स्तर पर, राज्यों के स्तर पर तथा जिला स्तर पर की गयी है ।

केन्द्र तथा राज्यों द्वारा व्यवस्था होने के बावजूद भी इस महामारी ने लोगों के जीविकापार्जन को बुरी तरह प्रभावित किया तथा लोगों को शहरों से मजबूर होकर वापस लौटना पड़ा । इतना ही नहीं साधन न उपलब्ध होने के कारण लोगों को हजार-हजार कि.मी. पैदल चलना पड़ा । कुछ सरकारों ने लोगों के रखरखाव के लिए प्रंशसनीय कार्य किया परन्तु कुछ राजनीति ही करते रह गये और श्रमिकों की दशाओं पर ध्यान नहीं दिया । कहने को तो श्रमिकों के अधि ाकार को संरक्षित करने के लिए बहुत से कानून है जैसे कर्मकार प्रतिकर अधिनयम, ट्रेड यूनियन आदि । परन्तु यह अधिनियम केवल संगठित क्षेत्र में कार्य करने वाले श्रमिकों की सुरक्षा हेतु इस

तरह को कोई भी कानून नहीं है । हालांकि इस महामारी में असंगठित क्षेत्रों में कार्य करने वाले वे श्रमिक जो दिहाड़ी मजदूर (प्रतिदिन) के आधार पर काम करते थे । उनकी नौकरीयां चली गयी और वे बेरोजगार हो गये । उनके इस तरह से बेरोजगार होने से न केवल वे व्यक्तिगत रूप से प्रभावित हुये बल्कि पूरा परिवार ही प्रभावित हुआ है ।

उपर्युक्त जो भी समस्यायें इस काल में झेलनी पड रही हैं उनमें प्रत्यक्ष रूप से जनता भी जिम्मेदार है क्योकि कौन श्रमिक किस प्रदेश का है, किस प्रदेश में काम कर रहे वहा की सरकारों के पास कोई भी अभिलेख उपलब्ध नहीं है । अतः अभ समय आ गया है कि यदि हम एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश नौकरी करने जाते हैं तो जिस प्रदेश के हम निवासी है वहाँ एक अभिलेख मे यह दर्ज होना चाहिये कि वह व्यक्ति अपने प्रदेश से किस प्रदेश में नौकरी करने गया है । दूसरे प्रदेश में यदि उसे कोई परेशानी होती है तो उसके मूल प्रदेश की सरकार की जिम्मेदारी होनी चाहिए कि उसकी समस्याओं को समझे और उनका निराकरण करे । उन्हे केवल वोट बैंक न समझा जाये।

करोना काल की कविताएं

घर पर रह कर

✍ प्रोफेसर उमा शंकर अग्रवाल

वर्ष **2020** के आगमन के साथ से ही संपूर्ण विश्व अत्यंत ही चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों का सामना कर रहा है। आज मानव की उत्तरजीविता के लिए प्रश्न चिन्ह खड़ा हो गया है। यह विषम परिस्थिति अभी कितने समय और रहेगी, कहना संभव नहीं। फिर भी हमें इसका मुकाबला धैर्यपूर्वक करना होगा। इसी सन्दर्भ में अपनी एक काव्य रचना आपसे साझा कर रह हूँ, जिसका शीर्षक है "घर पर रह कर"

लड़ो युद्ध तुम, घर पर रह कर
करो युद्ध तुम, घर पर रह कर
मानव जीवन खतरे में है
द्वन्द करो तुम, घर पर रह कर ।

प्रतिदिन सुबह सवेरे जब तुम, घर से बाहर जाते थे
और साँझ को थके हारकर, वापस घर में आते थे
जल्दी जल्दी बीत रहे दिन, पता नहीं चल पाता था
और कोसते थे खुद को यूँ, जीवन बीता जाता था ।
कितना लम्बा दिन होता है, कितने लम्बे पल होते हैं
सीख लो अब तुम, घर पर रह कर
लड़ो युद्ध तुम, घर पर रह कर
करो युद्ध तुम, घर पर रह कर ।

जग में हम, अब जहाँ जहाँ हैं, वहीं वहीं पर रहना है
जाना है अब, नहीं कहीं पर, घर के अंदर रहना है
देखो अपने घर के अंदर, झांको अपने मन के अंदर
क्या क्या तुमने कर डाला है, क्या क्या तुमको करना है ।

काम बहुत से खत्म हो चुके, काम बहुत से बाकी हैं
मिला समय है, घर पर रह कर
लड़ो युद्ध तुम, घर पर रह कर
करो युद्ध तुम, घर पर रह कर ।

क्यों उदास हो, क्यों निराश हो, तुमको खुद ही पता नहीं है
इस उलझन को सुलझाओ तुम, इसकी कोई थाह नहीं है
मधुर सरस जीवन के कुछ पल, किस्मत से ही मिल पाए हैं
मोल नहीं आंको इनका तुम, हैं अनमोल, जग ने पाए हैं ।

ठहरो, जीलो, रूककर जी भर, हर पल को और हर छिन को
अद्‌भुत हैं ये, घर पर रह कर
लड़ो युद्ध तुम, घर पर रह कर
करो युद्ध तुम, घर पर रह कर ।

काम करो तुम घर पर रह कर, ध्यान करो तुम घर पर रह कर
नाम करो तुम घर पर रह कर, अभिमान करो तुम घर पर रह कर
बैद्य विशारद जूझ रहे हैं, बड़ी पहेली बूझ रहे हैं
अपने प्राणों की बाजी पर, सबका सुख वह ढूंढ रहे हैं ।

थाल बजाओ, दीप जलाओ, सम्मान करो तुम घर पर रह कर
हाथ बंटाओं, घर पर रह कर
लड़ो युद्ध तुम, घर पर रह कर
करो युद्ध तुम, घर पर रह कर ।
मानव जीवन खतरे में है
द्वन्द करो तुम, घर पर रह कर
जान बचा लो घर पर रह कर
जहान बचा लो घर पर रह कर
घर पर रह कर, बस, घर पर रह कर ।

महामारी के इस दौर में कुछ दिन पहले विश्व के विकसित देशों जैसे इटली, स्पेन, यूनाइटेड किंगडम, अमेरिका एवं ब्राजील से बड़े ही हृदय विदारक दृश्य सामने आये। हमने देखा कि महामारी से प्रतिदिन प्राण गंवाने वाले लोगों की संख्या इतनी अधिक थी कि मृतकों का अंतिम संस्कार करने के लिए जमीं भी कम पड़ रही थी। शवों को सामूहिक रूप से परतों में दफनाया जा रहा था।

एक प्रश्न मन में उठा, क्या अब दो गज जमीं भी नसीब नहीं होगी लोगों को। इसीलिए हमारे देश की सरकार ने सभी देशवासियो को सुझाव दिया है कि हर समय अपने बीच दो गज की दूरी बना के रखें। इसी सन्दर्भ में कुछ पंक्तियाँ एक गजल-गीत के रूप में लिखीं हैं। आपसे साझा कर रहा हूँ।

अब सभी के लिए

जमीं मिलेगी नहीं, दो गज
अब सभी के लिए
यूँ जरूरी है दूरी, दो गज
अब सभी के लिए

न जाने कौन, कब चला जाये
उठ गयी है ये दहशत
अब सभी के लिए
जमीं मिलेगी नहीं, दो गज ...

बड़ा नायाब 'इल्म' है, जालिम
बड़ी मुश्किल ये कशमकश
अब सभी के लिए
जमीं मिलेगी नहीं, दो गज ...

अब यहाँ किसको खबर है, किसी की भी
बदल रही है ये दुनियाँ
अब सभी के लिए
जमीं मिलेगी नहीं दो गज ...

योगी हूँ, निरोगी हूँ, मैं ही मोदी हूँ, 'उमेश'
मान जा नहिं तो, हरा दूंगा तुझे
अब सभी के लिए

जमीं मिलेगी नहीं, दो गज
अब सभी के लिए
यूँ जरूरी है दूरी, दो गज
अब सभी के लिए

लोक संस्कृति और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम

✍ डॉ. आदित्य विक्रम सिंह

लोक संस्कृति और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अंतर्सबंधों पर बात करने से पूर्व हमें लोक संस्कृति और स्वतंत्रता संग्राम का परिचयात्मक रूप जान लेना चाहिए । संस्कृति ब्रह्मा की भाँति अवर्णनीय है । वह व्यापक, अनेक तत्वों का बोध कराने वाली, जीवन की विविध प्रवृत्तियों से संबंधित है, अतः विविध अर्थों भावों में उसका प्रयोग होता है । मानव मन की बाह्य प्रवृत्ति-मूलक प्रेरणाओं से जो कुछ विकास हुआ है उसे सभ्यता कहेंगे और उसकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों से जो कुछ बना है, उसे संस्कृति कहेंगे।

लोक का अभिप्राय सर्वसाधारण जनता से है, जिसकी व्यक्तिगत पहचान न होकर सामूहिक पहचान है ।दीन-हीन, शोषित दलित,जंगली जातियाँ, कोल, भील, गोंड (जनजाति), संथाल,नाग, किरात, हूण, शक, यन, खस, पुककस आदि समस्त लोक समुदाय का मिलाजुला रूप लोक कहलाता है । इन सबकी मिलिजुली संस्कृति, लोक संस्कृति कहलाती है । देखने में इन सबका अलग-अलग रहन-सहन है, वेशभूषा,खान-पान पहावा-ओढावा, चाल-व्यवहार, नृत्य,गीत, कला-कौशल, भाषा आदि सब अलग- दिखाई देते है, यही लोक संस्कृति है । लोक संस्कृति कभी भी शिष्ट समाज की आश्रित नहीं रही है, उलटे शिष्ट समाज लोक संस्कृति से प्रेरणा प्राप्त करता रहा है।

स्वतंत्रता और स्वाधीनता प्राणिमात्र का जन्मसिद्ध अधिकार है । इसी से आत्मसम्मान और आत्म उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त होता है । भारतीय राष्ट्रीयता को दीर्घावधि विदेशी शासन और सत्ता की कुटिल-उपनिवेशवादी नीतियों के चलते परतंत्रता का दंश झेलने को मजबूर होना पडा था और जब इस क्रूरतम कृत्यों से भरी अपमानजनक स्थिति की चरम सीमा हो गई तब जनमानस उद्वेलित हो उठा था । अपनी राजनैतिक- सामाजीक-सांस्कृतिक-आर्थिक पराधीनता से मुक्ति के लिए सन् **1857** से सन् **1947** तक दीर्घावधि क्रान्ति यज्ञ की बलिवेदी पर अनेक राष्ट्रभक्तों ने तन-मन जीवन अर्पित कर दिया था । यह क्रान्ति करवटे लेती हुयी लोकचेतना और लोक संस्कृति के तत्वों की उत्ताल तरंगो से आप्लाविति है । यह आजादी हमें यूँ ही नहीं प्राप्त हुई वरन् इसके पीछे शहादत का इतिहास है । लाल-बाल-पाल ने इस संग्राम को एक पहचान दी तो महात्मा गाँधी ने इसे अपूर्व विस्तार दिया । एक तरफ सत्याग्रह की लाठी और दूसरी तरफ भगतसिंह व आजाद जैसे क्रान्तिकारियों द्वारा पराधीनता के खिलाफ दिया गया इन्कलाब का अमोघअस्त्र अंग्रेजों की हिंसा पर भारी पड़ा और अन्ततः **15** अगस्त **1947** के सूर्योदय ने अपनी कोमल रश्मियों से एक नये स्वाधीन भारत का स्वागत किया ।

इतिहास अपनी गाथा खुद कहता है । सिर्फ पन्नों पर ही नहीं बल्कि लोकमानस के कंठ

में, गीतों और किंवदंतियों इत्यादि के माध्यम से यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवाहित होता रहता है । वैसे भी इतिहास की वही लिपिबद्धता सार्थक और शाश्वत होती है जो बीते हुये कल को उपलब्ध साक्ष्यों और प्रमाणों के आधार पर यथावत प्रस्तुत करती है । जरूरत करती है । जरूरत है कि इतिहास की उन गाथाओं को भी समेटा जाय जो मौखिक रूप में जन-जीवन में विद्यमान है, तभी ऐतिहासिक घटनाओं का सार्थक विश्लेषण हो सकेगा । लोकलय की आत्मा में मस्ती और उत्साह की सुगन्ध ा है तो पीड़ा का स्वाभाविक शब्द स्वर भी । कहा जाता है कि पूरे देश में एक ही दिन **31** मई **1857** को क्रान्ति आरम्भ करने का निश्चय किया गया था, पर **21** मार्च **1857** को बैरकपुर छावनी के सिपाही मंगल पाण्डे की शहादत से उठी ज्वाला वक्त का इन्तजार नहीं कर सकी और प्रथम स्वाधीनता संग्राम का आगाज हो गया । मंगल पाण्डे के बलिदान की दास्तां को लोक चेतना में यूँ व्यक्त किया गया है-जब सत्तावनि के रारि भइलि/बीरन के बीर पुकार भइल/बलिया का मंगल पाण्डे के/बलिवेदी से ललकार भइल/मंगल मस्ती में चूर चलल/पहिला बागी मसहूर चचल/गोरनि का पलटनिका आगे/बलिया के बाँका सूर चलल ।

कहा जाता है कि **1857** की क्रान्ति की जनता को भावी सूचना देने हेतु और उनमें सोयी चेतना को जगाने हेतु 'कमल' और 'चपाती' जैसे लोकजीवन के प्रतीकों को संदेशवाहक बनाकर देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भेजा गया । यह कालिदास के मेघदूत की तरह अतिरंजना नहीं अपितु एक सच्चाई थी । क्रान्ति का प्रतीक रहे 'कमल' और 'चपाती' का भी अपना रोचक इतिहास है । किंवदन्तियों के अनुसार एक बार नाना साहब पेशवा की भेंट पंजाब के सूफी फकीर दस्सा बाबा से हुई । दस्सा बाबा ने तीन शर्तों के आधार पर सहयोग की बात कही- सब जगह क्रान्ति एक साथ हो, क्रान्ति रात में आरम्भ हो और अँग्रेजों की महिलाओं व बच्चों का कत्लेआम न किया जाए । नाना साहब की हामी पर अलौकिक शक्तियों वाले दस्सा वितरित की जायेंगी, वह क्षेत्र विजित हो जायेगा । फिर क्या था, गाँव-गाँव तक क्रान्ति का संदेश फैलाने के लिए चपातियाँ भेजी गई । कमल को तो भारतीय परम्परा में शुभ माना जाता है पर चपातियों को भेजा जाना सदैव से अंग्रेज अफसरों के लिए रहस्य बना रहा । वैसे भी चपातियों का सम्बन्ध मानव के भरण-पोषण से है । विचारक वी.डी. सावरकर ने एक जगह लिखा है कि- "हिन्दुस्तान में जब भी क्रान्ति का मंगल कार्य हुआ, तब ही क्रान्ति- दूतों चपातियों द्वारा देश के एक छोर से दूसरे छोर तक इस पावन संदेश को पहुँचाने के लिए इसी प्रकार का अभियान चलाया गया था क्योंकि वेल्लोर के विद्रोह के समय में भी ऐसी ही चपातियों ने सक्रिय योगदान दिया था ।" चपाती (रोटी) की महत्ता मौलवी इस्माईल मेरठी की इन पंक्तियों में देखी जा सकती है - मिले खुशक रोटी जो आजाद रहकर/तो वह खौफो जिल्लत के हलवे से बेहतर/जो टूटी हुई झोंपड़ीवे जरर हो/ भली उस महल से जहाँ कुछ खतर हो ।

1857 की क्रान्ति वास्तव में जनमानस की क्रान्ति थी, तभी तो इसकी अनुगूँज लोक साहित्य में भी सुनायी पड़ती है । भारतीय स्वाधीनता का संग्राम सिर्फ व्यक्तियों द्वारा नहीं लड़ा गया बल्कि कवियों और लोक गायकों ने भी लोगों को प्रेरित करने में प्रमुख भूमिका निभायी । लोगों को इस संग्राम में शामिल होने हेतु प्रकट भाव को लोकगीतों में इस प्रकार व्यक्त किया गया- गाँव-गाँव में डुग्गी बाजल, बाबू के फिरल दुहाई/लोहा चबवाई के नेवता बा, सब जन आपन दल बदल/बा गंवकई के नवेता, चूड़ी फोरवाई के नेवता/सिंदूर पोंछवाई के नेवता बा, रांड कहवार के नेवता राजस्थान के राष्ट्रवादी कवि शंकरदान सामोर ने मुखरता के साथ अंग्रेजों की गुलामी की बेड़ियाँ तोड़ देने का आह्वान किया - आयौ औसर आज, प्रजा परव पूरण पालण/आयौ औसर आज, गरब गोरां रौ गालण/आयौ औसर आज, रीत रारवण हिंदवाणी/ आयौ औसर अवर, औसर इस्यौ न आवसी । **1857** की लड़ाई आर-पार की लड़ाई थी हर कोई चाहता था कि वह इस संग्राम में अंग्रेजों के विरूद्ध जमकर लड़े । यहाँ तक कि ऐसे नौजवानों को जो घर में बैठे थे, महिलाओं ने लोकगीत के माध्यम से व्यंग कसते हुए प्रेरित किया- लागे सरम लाज घर में बैठ/ मरद से बनिके लुगाइया आए हरि/ पहिरि के साड़ी, चूड़डी मुंहवा छिपाई लेहु/ राखि लेई तोहरी पगरइया आए हरि ।

1857 की क्रान्ति की गूँज दिल्ली से दूर पूर्वी उत्तर प्रदेश के इलाकों में सुनायी दी थी । वैसे भी उस समय तक अँग्रेजी फौज में ज्यादातर सैनिक इन्हीं क्षेत्रों के थे । स्वतंत्रता की गाथाओं में इतिहास प्रसिद्ध चौरीचौरा की डुमरी रियासत बंधु सिंह का नाम आता है, जो कि **1857** की क्रान्ति के दौरान अँग्रेजों का सर कलम करके और चौरीचौरा के समीप स्थित कुसुमी के जंगल में अस्थित माँ तरकुलहा दैवी के स्थान पर इसे चढ़ा देते । कहा जाता है कि एक गद्दार के चलते अँग्रेजों की गिरफ्त में आये बँधू सिंह को जब फाँसी दी जा रही थी, तो सात बार फाँसी का फन्दा ही टूटता रहा । यही नहीं जब फाँसी के फन्दे से उन्होंने दम तोड़ दिया तो उस पेड़ से रक्तस्राव होने लगा जहाँ बैठकर वे देवी से अँग्रेजों के खिलाफ लड़ने की शक्ति माँगते थे । पूर्वांचल के अंचलों में अभी भी यह पंक्तियाँ सुनायी जाती हैं - सात बार टुटल जब, फाँसी के रसरिया /गोरवन के अकिल गईल चकराय/असमय/पड़ल माई गाड़े में परनवा/अपने ही गोदिया में माई लेतु तू सुलाय/बंद भईल बोली रूकि गइली संसिया/नीर गोदी में बहाते, लेके बेटा के लशिया ।

भारत को कभी सोने की चिड़िया कहा जाता था । पर अँग्रेजी राज ने हमारी सभ्यता व संस्कृत पर घोर प्रहार किया और यहाँ की अर्थव्यवस्था को भी दयनीय अवस्था में पहुँचा दिया । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस दुर्दशा का मार्मिक वर्णन किया है- रोअहु सब मिलिके आवहु भारत भाई /हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई / सबके पहिले जेहि/ईश्वर धन बल दिनो/ सबके पहले जेहि सभ्य विधाता कीनो /सबके पहिले जो रूप-रंग रस-भीनो / सबके पहिले विद्याफल जिन गहि

लीनोध सबके पीछे सोई परत लखाई /हा हा! भारतदुर्दशा ने देखी जाई ।

आजादी की सौगात भीख में नहीं मिलती बल्कि उसे छीनना पड़ता है । इसके लिए जरूरी है कि समाज में कुछ नायक आगे आयें और शेष समाज उनका अनुसरण करे । ऐसे नायकों की चर्चा गाँव-गाँव की चौपालों पर देखी जा सकती थी । गुरिल्ला शैली के कारण फिरंगियों में दशहत और आतंक का पर्याय बन क्रान्ति की ज्वाला भड़काने वाले तात्या टोपे से अँग्रेजी रूह भी काँपती थी फिर उनका गुणगान क्यों न हो । राजस्थानी कवि शंकरदान सामौर तात्या की महिमा 'हिन्द नायक' के रूप में गाते हैं- जठै गयो जंग चीतियो, खटके बिण रण खेतध्तकड़ौ लडियाँ तांतियो, हिन्द थान रे हेत/ मचायो हिन्द में आखी,/ तहल कौ सूवायो अथग जोर । इसी प्रकार शंकरपुर के राना बेनीमाधव सिंह की वीरता को भी लोक गीतों में चित्रित किया गया है- राजा बहादुर सिपाही अवध में/ धूम मचाई मोरेराम रे / लिख चिठिया लाट ने भेजाध आब मिलो राना भाई रे / जंगी खिलत लंदन से मंगा दूं/ अवध में सूबा बनाई रे ।

1857 की क्रान्ति में जिस मनोयोग से पुरूष नायकों ने भाग लिया, महिलायें भी उनसे पीछे न रहीं । लखनऊ में बेगम हजरत महल तो झाँसी में रानी लक्ष्मीबाई ने इस क्रान्ति की अगुवाई की । बेगम हजरत महल ने लखनऊ की हार के बाद अवध के ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर क्रान्ति की चिन्गारी फैलाने का कार्य किया। मजा हजरत ने नहीं पाई /केसर बाग लगाई कलकत्ते से चला फिरंगी/ तंबू कनात लगाई/ पार उतरि लखनऊ का/ आयो जेरा दिहिस लगाई/आसपास लखनऊ का घेरा/ सड़कन तोप धराई । रानी लक्ष्मीबाई ने अपनी वीरता से अँग्रेजों के दाँत खट्टे कर दिये । उनकी मौत पर जनरल ह्युररो ने कहा था कि- "यहाँ वह औरत सोयी हुयी है, जो विद्रोही में एकमात्र मर्द थी ।" 'झाँसी की रानी' नामक अपनी कविता में सुभद्राकुमारी चौहान **1957** की उनकी वीरता का बखान करती हैं -चमक उठी सन् सत्तावन में / वह तलवार पुरानी थी / बुन्देले हरबोलों के मुँह / हमने सुनी कहानी थी / खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी/ खूब लड़ी मर्दानी/ अरे झाँसी वारी रानी / पुरजन पुरजन तोपें लगा दई/ गोला चलाए असमानी /अरे झाँसी वारी रानी/खूब लड़ी मर्दानी/ सबरे सिपाइन पैरा जलेबी/अपना चलाई गुरधानी ।

1857 की क्रान्ति में शाहाबाद के ७६ वर्षीय कुँवर सिंह को दानापुर के विद्रोही सैनिको द्वारा १६ जुलाई को आरा शहर पर कब्जा करने के बाद नेतृत्व की बागडोर सौपी गयी । बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के तमाम अंचलों में शेर बाबु कुँअरसिंह ने घूम-घूम कर **1857** की क्रान्ति की अलख जगायी । आज भी इस क्षेत्र में कुँअर सिंह को लेकर तमाम किंवदन्तियाँ मौजूद है । इस क्षेत्र के अधिकतर लोकगीतों में जनाकांक्षाओं को असली रूप देने का श्रेय बाबु कुँअर सिंह को दिया गया है- बक्सर से जो चले कुँअर सिंह पटना आकर टीक/ पटना के मजिस्टर बोले करो कुँअर को ठीक / अतुना/ बात जब सुने कुँअर सिंह दी बंगला फुंकवाई/कली-गली

मजिस्टर रोए लाट गये घबराई ।

1857 की क्रान्ति के दौरान ज्यों-ज्यों लोगो को अँग्रेजों की पराजय का समाचार मिलता वे खुशी से झूम उठते । अजेय समझे जाने वाले अँग्रेजो का यह हश्र, उस क्रान्ति के साक्षी कवि सखवत राय ने यूँ पेश किया है- गिद्ध मेडराई स्वान स्यार आनंद छाये/कहिं गिरे गोरा कहीं हाथी बिना सूंड के । **1857** के प्रथम स्वाधीनता संग्राम ने अँग्रेजी हुकूमत को हिलाकर रख दिया । बौखलाकर अँग्रेजी हुकूमत ने लोगों को फाँसी दी, पेड़ो पर समूहों में लटका कर मृत्यु दण्ड दिया और तोपों से बाँधकर दागा-झूलि गइलें अमिली के डरियाँ / बजरिया गोपीगंज कई रहलि । वहीं जिन जीवित लोगों से अँग्रेजी हुकूमत को ज्यादा खतरा महसूस हुआ, उन्हे काला पानी की सजा दे दी । तभी तो अपने पति को काला पानी भेजे जाने पर एक महिला 'कजरी' के बोलो में कहती है- अरे राम नागर नैया जाला काले पनियां रे हरी/सबकर नैया जाला कासी हो बिसेसर रामा /नागर नैया जालाकाले पनियां रे हरी/ घरवा में रोवै नागर, माई और बहिनियां रामा/से जिया पैरोवे बारी धनिया रे हरी ।

बंगाल विभाजन के दौरान स्वदेशी-बहिष्कार-प्रतिरोध का नारा खूब चला । अँग्रेजी कपड़ों की होली जलाना और उनका बहिष्कार करना देश भक्ति का शगल बन गया था, फिर चाहे अँग्रेजी कपड़ो में ब्याह रचाने आये बाराती ही हो- फिर जाहु-फिर जाहुघर का समधिया हो/मोर धिया रहि हैं कुँआरि / बसन उतारि सब फेंकहु विदेशिया हो /मोर पूत रहि हें उधार /बसन सुदेसिया मंगाई पहिरबा हो / तब होइ है धिया के बियाह ।

जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड अँग्रेजी हुकूमत की बर्बरता व नृशंसता का नमूना था । इस हत्याकाण्ड ने भारतीयों विशेषकर नौजवानों की आत्मा को हिलाकर रख दिया । गुलामी का इससे वीभत्स रूप हो भी नहीं सकता ।सुभद्राकुमारी चौहान ने 'जलियावाले बाग में वसंत' नामक कविता के माध्यम से श्रद्धांजलि अर्पित की है- कोल बालक मरे यहाँ गोली खा-खाकर / कलियाँ उनके लिए गिराना थोड़ी लाकर / आशाओं से भरे हृदय भी छिन्न हुए हैं / अपने प्रिय-परिवार देश से भिन्न हुए हैं / कुछ कलियाँ अधखिली यहाँ इसलिए चढ़ाना/ करके उनकी याद अश्रु की ओस बहाना/चड़प-तड़पकर वृद्ध मरे हैं गोली खाकर / शुष्क पुष्प कुछ वहाँ गिरा देना तुम जाकर/ यह सब करना, किन्तु बहुत धीरे-से आना/यह है शोक- स्थान, यहाँ मत शोर मचाना ।

कोई भी क्रान्ति बिना के पूरी नहीं होती, चाहे कितने ही बड़े दावे किये जायें । भारतीय स्वाधीनता संग्राम में एक ऐसा भी दौर आया जब कुछ नौजवानों ने अँग्रेजी हुकूमत की चूल हिला दी, नतीजन अँग्रेजी सरकार उन्हें जेल में डालने के लिए तड़प तड़प उठी । **11** अगस्त, **1908** को जब **15** वर्षीय क्रान्तिकारी खुदीराम बोस को अँग्रेज सरकार ने निर्मता से फाँसी पर लटका

दिया तो मशहूर उपन्यासकार प्रेमचन्द्र के अन्दर का देशप्रेम फीर हिलोरें मारने लगा और वे खुदीराम बोस की एक तस्वीर बाजार से खरीदकर अपने घर लाये तथा कमरे की दिवार पर टांग दिया । खुदीराम बोस को फाँसी दिये जाने से एक वर्ष पूर्व ही उन्होंने 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' नामक अपनी प्रथम कहानी लिखी थी, जिसके अनुसार- 'खून की वह आखिरी बूँद जो देश की आजादी के लिए गिरे, वही दुनिया का सबसे अनमोल रतन है ।' उस ने 'बिदा' में लिखा कि- गिरफ्तार होने वाले हैं /आता है वारंट अभी /धक सा हुआ हृदय, मैं सहमी /हुए विकल आसंक सभी /मैं पुलकित हो उठी ! यहाँ भी /आज गिरफ्तारी होगी /फिर जी धड़का, क्या भैया की /सचमुच तैयारी होगी । आजादी के दीवाने सभी थे । हर पत्नी की दिली तमन्ना होती थी कि उसका भी पति इस दीवनगी में शामिल हो । तभी तो पत्नी पित के लिए गाती है- जागा बलम गाँधी टोपी वाले आई गइलैं..../ राजगूरू सुखदेव भगत सिंह हो तो/ तहरे जगावे बदे फाँसी प रचढ़ाय गइलै ।

सरदार भगत सिंह क्रान्तिकारी आन्दोलन के अगुवा थे, जिन्होंने हँसते-फाँसी के फन्दों को चूम लिया था । एक लोक गायक भगत सिंह के इस तरह जाने का बर्दाशत नहीं कर पाता और गाता है - एक- एक क्षण विलम्ब का मुझे याता दे रहा है- तुम्हारा फंदा मेरे गरदन में छोटा क्यों पड़ रहा है /मैं एक नायक की तरह सीधा स्वर्ग में जाऊँगा /अपनी फरिया धर्मराज को सुनाऊँगा /में उनसे अपना वीर भगत सिंह माँग लाऊँगा । इसी प्रकार चन्द्रशेखर की शाहादत पर उन्हें याद करते हुए एक अंगिका लोकगीत में कहा गया- हौ आजाद त्वौं अपनौ प्राणे कै /भुलैबे /देश तोरो रिनी रहेते । सुभाष चन्द्र बोस ने नारा दिया कि- "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हे आजादी दूँगा, फिर क्या था पुरूषों के साथ-साथ महिलाएँ भी उनकी फौज में शामिल होने के लिए बेकरार हो उठी- हरे रामा सुभाष चन्द्र ने फौज सजायी रे हारी /कड़-छड़ा पैंजनिया छोड़बे, छोड़बे हाथ कंगनावा रामा / हरे रामा, हाथ में झण्ड़ा लै के जुलूस निकलबें रे हारी ।

महात्मा गाँधी आजादी के दौर के सबसे बड़े नेता थे/चरखा कातने द्वारा उन्होने स्वावलम्बन और स्वदेशी का रूझान जगाया । नौजवान अपनी-अपनी धुन में गाँधी जी को प्रेरणाम्रोत मानते और एक स्वर में गाते- अपने हाथे चरखा चलउबै/ हमार कोऊ का करिहैं/ गाँधी बाबा से लगन लगउबै /हमार कोई का क्रान्ति फिर से जिन्दा हो गयी हो । क्या बुढ़े, क्या नवयुक, क्या पुरूष, महिला, क्या किसान, क्या जवान.... / सभी एक स्वर में गाँधीजी के पीछे हो लिये । ऐसा लगा कि अब तो अँग्रेजों को भारत छोड़कर जाना ही होगा । गया प्रसाद शुक्ल 'स्नेही' ने इस ज्वार को महसूस किया और इस जन क्रान्ति को शब्दों से यूँ सँवारा-बीसवीं सदी के आते ही, फिर उमड़ा जोश जवानों में हड़कम्प मच गया नए सिरे से, फिर शोषक शैतानों में /सौ बरस भी नहीं बीते थे सन् बयालीस पावन आया/लोगों ने समझा नया जन्म लेकर सन्

सत्तावन आया / आजादी की मच गई धूम फिर शो हुआ आजादी का/ फिर जाग उठा यह सुप्त देश चालीसा कोटि आबादी का ।

देश आजाद हुआ । **15** अगस्त **1947** के सूर्योदय की बेला में विजय का आभास हो रहा था । फिर कवि लोकमन को कैसे समझाता । आखिर उसके मन की तरंगें भी तो लोक से ही संचालित होती हैं । कवित सुमित्रानन्दनपंत इस सुखद अनुभुति को यूँ सँजोते हैं- चिर प्रणम्य यह पुण्य अहन, जय गाओ सुरगण /अवतरित हुई चेतना भू पर नूतन /नव भारत, फिर चीर युगों का तमस आवरण /तरूण-अरूण सा उदित हुआ परिदास कर भुवन/सभ्य हुआ अब विश्व, सभ्य धरणी का जीवन /खुले भारत के संग भू के जड़ बंधन/शांत हुआ अब युग-युग का भौतिक संघर्षण / मुक्त चेतना भारत की यह करती घोषणा ।

1857 से **1947** तक की कहानी सिर्फ एक गाथा भर नहीं है बल्कि एक दास्तान है कि क्यों हम बेड़ियो में जकड़े, किस प्रकार की यातनायें हमने सहीं और शहीदों की किन कुर्बानियों के साथ हम संघर्ष, राजनैतिक दमन व आर्थिक शोषण के विरूद्ध लोक संस्कृति का प्रबद्ध अभियान एवं सांस्कृतक नवोन्मेष की दास्तान है । आजादी का अर्थ सिर्फ राजनैतिक आजादी नहीं अपितु यह एक विस्तृत अवधारण है, जिसमें व्यक्ति से लेकर राष्ट्र का हित व उसकी परम्परायें छुपी हुई हैं । जरूरत है हम अपनी कमजोरियों का विश्लेषण करें, तदनुसार उनसे लड़ने की चुनौतियाँ स्वीकारें और नए परिवेश में नए जोश के साथ आजादी के नये अर्थों के साथ एक सुखी व समृद्ध भारत का निर्माण करें ।

सन्दर्भः

1. भारत का आधुनिक इतिहास, बिपिन चन्द्र
2. भारत का स्वतंत्रता संग्राम, बिपिन चन्द्र
3. अवधी लोक गीत, प्रकाशन विभाग, उ.प्र. सरकार
4. **1947** विषेशांक पत्र पत्रिकाएं

स्त्री

तुम जब भी अपने हक की बात करोगी
तो गिना दिया जाएगा चूल्हा, चौका और
बर्तन
तेरे चमकते सौंदर्य पर चढ़ा दिया जाएगा,
एक और मुल्लमा
चापलूसी का
और बताया जाएगा,
तू दुनिया की सबसे हसीन स्त्री है।
तुम जब भी,
घर की चारदीवारी से,
बाहर झांकने की कोशिश करोगी
तो तुझे महंगे-महंगे गहने और कपड़े दिलाए
जाएंगे
और पहनाकर गहने की बोझ से कुचला
जाएगा
तुम्हारे ख्वाब और जज्बात को।
दिनभर की ऊब को
मिटाया जाएगा
तुम्हें आरामगाह बनाकर।
तुम जब भी रात्रि में खुले आसमान को
निहारोगी
और टिमटिमाते सब अरमान जल उठेगी
धुंधुवाकर
बचेगी केवल राख।
तब तुम्हारे लिए
तुम्हारे घरों की चहारदीवारें
चीन की दीवार से भी लंबी लगेगी
जिसकी सीमा तुम्हारे लिए
कभी खत्म ही नहीं होगी।।

बूढ़ी माँ

✍ **निर्मला वर्मा**

माँ के बाजुओं में,
नहीं रहा वे ताक़त
कि सबको बना-बना के खिल सके अब
भी।
पहल बन ने जवाब दिया
फिर धीरे-धीरे शरीर भी देने लगी जवाब
अब तो घुटने, कमर एक-एक करके सब
अड़ जाते हैं मां के आगे,
तब माँ को न ही कोई घरेलू इलाज सूझता
न एलोपैथिक तक पहुंच
बेबस मन को थामें रह जाती हैं माँ
खामोश सह जाती हैं
असहनीय पीड़ा।।

पूर्वोत्तर में लोक-रंग के विविध पक्ष

✍ सुनील कुमार

पूर्वोत्तर भारतीय समाज में कृषि तथा सामाजिक रीति-रिवाजों के लिए लोक नृत्य, त्योहार हैं। अच्छी फसल, उत्पादन एवं सम्पन्नता के लिए धार्मिक लोक विश्वास प्रचलित हैं। प्रत्येक जनजातियों की अपनी अलग-अलग धार्मिक मान्यताएं एवं लोक विश्वास है। इनके लोक विश्वास का अपना अलग महत्व है। पारंपरिक रीति-रिवाज, नृत्य-संगीत, भोजन के द्वारा धार्मिक उत्सवों एवं त्योहारों का आयोजन किया जाता हैं। अरुणाचल प्रदेश के आपातानी जाति की लोक संस्कृति को सूक्ष्मता से उद्घाटित करते हुए सांवरमल सांगानेरिया लिखते हैं - ''आपातानी लोग चावल के बहु-उत्पादन के लिए अरुणाचल में प्रसिद्ध हैं। 'पाखु हुतु' लोक नृत्य चावल के उत्पादन से जुड़ा है। इनका विश्वास है कि उन्हें चावल के बीज सर्वप्रथम उनके पूर्वज आबोतानी की पत्नी ने दिये थे। बीजों को खेतों में बोने के बाद उन्हें 'पाखु' और 'पागी-यारू' नामक चिड़ियों का भय सताया कि वे इन्हें कहीं चुग न लें। इस नृत्य में चिड़ियों का स्वांग धरके बच्चे और उनके साथ अपनी विविध रंगी पोशाकों में सजी किशोरियाँ नाचती हैं। यह एक तरह का नाट्य रूपान्तर होता है, जिसमें चिड़िया बीजों को चुगना चाहती है और लड़कियाँ उनकी रक्षा करती हैं।''[1] समाज की एवं समाज में रहने वाले लोगों की रक्षा के लिए भी कई तरह के लोक व्यवहार हैं। लोक व्यवहार में यह मान्यता है कि समाज की रक्षा के लिए पूजा-पाठ किया जाना आवश्यक है। सांवरमल सांगानेरिया ने इसे पुष्ट करते हुए आगे लिखा है - ''अनिष्टकारी आत्माओं की तुष्टि के लिए फोङलिङ त्योहार अक्टूबर-नवम्बर में मनाया जाता है। इसमें सूर्य और चन्द्रमा की पूजा कर सबकी सुख शांन्ति की कामना की जाती है। इस त्योहार में सभी लोगों का सम्मिलित होना आवश्यक है। इस त्योहार के बहाने ग्राम सुधार के तौर पर रास्तों तक की मरम्मत की जाती है। इसमें जो भाग नहीं लेते, उनको जुर्माना भरना होता है। सूर्य-चन्द्र की पूजा के बाद सफेद मुर्गे की बलि देकर उसके सिर को खम्भे पर लटका दिया जाता है । पूजा-वेदी के सामने हाथों में दाव और ढोल लेकर नर्तक नृत्य करते हैं एवं सामूहिक भोज होता है''[2]। पूर्वोत्तर भारत में लोक की कल्पना प्रकृति के बिना संभव नहीं है। प्रकृति के सभी रूपों में लोक विद्यमान है। यहाँ के लोग प्रकृति उपासक हैं। और इनकी लोक संस्कृति, लोक व्यवहार भी प्रकृति पर ही आधारित है। प्रकृति की उपासना करते हुए सांवरमल सांगानेरिया ने दिखाया है - ''प्रकृति-पूजक बुगन सूर्य, चन्द्र, नदी, पर्वत, पेड़-पौधें के साथ अदृश्य शक्तियों को भी पूजते हैं। ये अपना त्योहार 'क्ष्यात सवाई' दिसम्बर या फिर फरवरी में मनाते हैं। इस पर्व पर लकड़ी का एक खूंटा जमीन में गाड़कर धर्मगुरू सभी के कल्याण के लिए मंत्र पढ़ता है। कई दिनों तक पूजा चलती है। बुरी आत्माओं को ढेले मारकर भगाया जाता है। अन्तिम दिन सामूहिक भोज, नृत्य-गान होता है''[3]

मणिपुर पूर्वोत्तर का एक राज्य है। यह राज्य अपनी लोक संस्कृति के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ की रंग-बिरंगी संस्कृति देश ही नहीं, विश्व में भी प्रसिद्ध है। इस विषय में निरूपमा ने लिखा है – ''मणिपुरी नृत्य शैली में राधाकृष्ण संबंधी श्रृंगाररस युक्त रासलीला का मंचन किया जाता है। इस रासलीला में वसंतरास, कुंजरास, महारास, नित्यरास तथा दिवरास आदि रास नृत्य किए जाते हैं। मणिपुरी नृत्य का महत्व इसी बात से पता चलता है कि महाकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर ने जिस नवीन बांग्ला नृत्य-कला का पोषण किया, उसका उद्‌गम व स्रोत यही मणिपुरी नृत्य है''[4]।

नागालैण्ड की संस्कृति को समृद्ध बनाने में वहाँ के त्योहारों का महत्व काफी अधिक है। नागालैण्ड के त्योहार के बहाने वहाँ की लोक संस्कृति को दिखाने का प्रयास करती हुई निरूपमा कहती है – ''नागा लोगों द्वारा मनाए जाने वाले त्योहारों में सेकोन्यी, मोआत्सु, तुलुनी तथा तोक्कू एमोंग प्रमुख हैं । नागा आदिवासियों का सबसे लोकप्रिय नृत्य है 'नागा नृत्य' जो त्योहारों के अवसर पर किया जाता है। नागा लोग अपने नृत्य को 'लिमू' कहते हैं । नागा नृत्य वीर रस से भरा उत्तेजनायुक्त नृत्य है। इन नृत्यों में युद्ध कलाओं का प्रदर्शन करते हुए नागा नर्तक अपने सिर पर लम्बे परों अथवा सींगों का मुकुट पहनकर भालों के साथ नृत्य करते हैं। इस नृत्य में वाद्य के रूप में भैंसे के सींग का बना बाजा बजाया जाता है, जो 'महान सींगेरपेपा' कहलाता है''(वही, पृ. १२६)। नागालैण्ड के आभूषण भी उनकी लोक संस्कृति का एक हिस्सा हैं। इस विषय में प्रकाश सिंह ने लिखा है – ''वस्त्रों और आभूषणों के मामले में तो विजातीय संस्कृति ने स्थानीय रूप और आदर्शों को परिप्लावित कर दिया है। नगरों में रहने वाले नागाओं ने बड़ी तेजी से पाश्चात्य वेशभूषा अपना ली है । परंपरागत अलंकरण आभ्यांतरिक ग्रामों में ही देखने को मिल पाता है। पुरुषों ने अब अपने शिरोवस्त्र, मनकों के हार पहनने छोड़ ही दिये हैं, सिवा औपचारिक अवसरों के'' (नागालैण्ड, प्रकाश सिंह, पृ. ६०-६१)

पूर्वोत्तर भारत के आठों राज्यों की लोक संस्कृति की अपनी अलग पहचान है। अपनी रंग-बिरंगी लोक संस्कृति के लिए भी पूर्वोत्तर भारत पूरे विश्व में जाना जाता है।

नृत्य एवं संगीत का पूर्वोत्तर भारत में विशेष महत्व है। असम में नृत्य एवं संगीत का उपयोग प्रत्येक सामाजिक उत्सवों एवं त्योहारों में किया जाता है। नृत्य एवं संगीत का प्रयोग खुशी, उल्लास के समय किया जाता है। प्रकृति जब आनंद मनाती है तो उस समय मनुष्य कैसे चुप रह सकता है ? प्रकृति के साथ ही मनुष्य भी तरह-तरह के आमोद-प्रमोद में लिप्त हो जाता है। गाँव में प्रत्येक घर में जाकर 'हुचरि' गीत गाने की परंपरा यहाँ पर प्रसिद्ध है। असम के प्रमुख नृत्य 'बिहू' में समाज के सभी युवक-युवतियां भाग लेते हैं। लोक गीत भी गाये जाते हैं। यह गीत असमिया समाज की संस्कृति का प्रतीक है। बांसुरी का संगीत यहाँ प्रसिद्ध है। वैष्णव नट नृत्य का प्रसार शंकरदेव ने किया ।

मेघालय के कर्मनिष्ठ किसान जब फसल कट जाती है तो ये अपने ग्राम देवता की पूजा करते हैं। पूजा का विशेष अंग नृत्य होता है। पूजा एवं त्योहार में नृत्य को विशेष महत्व दिया जाता है। इनके अधिकतर त्योहार नृत्य प्रधान होते हैं। इनके लोकगीत और लोक-कथाओं का साहित्य काफी समृद्ध है। विभिन्न प्रकार की वेश-भूषा से लैस नौजवान, स्त्री-पुरुष, नृत्य एवं गीत की समा बांधते हुए वातावरण को और भी खुशनुमा बना देते हैं। ये खुले मैदान में गोल बनाकर नाचते हैं। फसल कट जाने के बाद मनाये जाने वाले त्योहारों के लिए नृत्य अलग होता है। यहाँ प्रत्येक त्योहार एवं उत्सव के लिए एक विषेश प्रकार का नृत्य एवं संगीत होता है। खासी जनजाति का प्रचलित त्योहार और नृत्य 'नोङक्रेम' है। भूमण्डलीकरण, आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं बाजारवाद के बढ़ते प्रकोप के बाद भी इस नृत्य का स्वरूप वही है जैसा कि पहले था। राज्य सरकार के द्वारा इस अवसर पर राजकीय छुट्टी की घोषणा की जाती है। यह नृत्य समूह में होता है।

मिजोरम की संस्कृति बहुरंगी है। इसलिए यहाँ के लोगों का स्वभाव सदाबहार होता है। नृत्य-संगीत की इस राज्य में भरमार है। इनके लोक नृत्य में 'चेराव' बहुत ही प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय है। यह लोक-नृत्य काफी कठिन है। इस नृत्य को किसी अकालमृत्यु की आत्मा की शांति के लिए किया जाता है। दूसरा नृत्य शुवाल्लम है जो कि विषेश अवसर पर किया जाता है। इनका मानना है कि मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति करने के लिए जीवन में सात उत्सवों को मनाना आवश्यक है। सातवें उत्सव पर यह 'शुवाल्लम' नृत्य किया जाता है। इस नृत्य का एक महत्व मुक्ति पाना भी है। मनुष्य अपनी जिंदगी से ऊबकर परमात्मा में जब लीन हो जाता है तो सातवें उत्सव का आरंभ किया जाता है। मिजोरम की जनजाति लाखेर एवं पवी जाति सोलकिया नामक नृत्य को प्रमुखता से मनाती है। यह नृत्य इन जनजातियों का लोकप्रिय नृत्य है।

नागालैण्ड की जनजातियों नृत्य एवं संगीत के प्रती रूचि देखने को मिलती है। पूर्वोत्तर भारत के अन्य प्रदेशों की तरह यहाँ भी कृषि प्रधान उत्सव एवं त्योहार मनाये जाते हैं। ठण्ड के दिनों में धान की फसल जब कटने वाली होती है, तब विशेष प्रकार के उत्सव एवं नृत्यों का आयोजन किया जाता है। वर्षा ऋतु के आगमन के साथ ही यह प्रदेश हरियाली से लहक उठती है।

मणिपुर को सांस्कृतिक रूप से नृत्य एवं संगीत का प्रदेश भी कहा जाता है। नृत्य और संगीत की यहाँ ऐसी विशेषता है कि समस्त भारतवर्ष को इस बात पर गर्व है। यहाँ प्रत्येक स्त्री-पुरुष नृत्य एवं संगीत कला में पारंगत होते हैं। कृष्णलीला का रास नृत्य यहाँ पर प्रसिद्ध है। प्रेमलीला में इसकी भूमिका काफी है। रासलीला नृत्य में आठ गोपियां होती हैं, और कृष्ण होता है। नर्तकियाँ घाघरे पहनती हैं और ओढ़नी कंचुकी में यह नृत्य बहुत ही आकर्षक होता है। दूसरा नृत्य है 'लइहरा ओबा'। इसका अर्थ होता है अपने देवताओं को प्रसन्न करना । इस नृत्य में पूरा गाँव भाग लेता है । यह नृत्य एक महीने तक चलता है ।सामाजिक से ज्यादा इसका महत्व धार्मिक होता है। यहाँ

पर और भी नृत्य हैं 'पुंग चोलम'। इस नृत्य में १४ नर्तक एक साथ हाथ में मृदंग लेकर और सिर पर पगड़ी बांधकर नाचते हैं। होली की रात में होने वाला 'थावल चोंग-बा' नृत्य बहुत ही मनोहर होता है। ग्राम-ग्राम के युवक-युवतियों का दल इस नृत्य में नाचने के लिए उमड़ पड़ता है। खुशी, उल्लास से सराबोर ये सारी रात नाचते हैं। नर्तक और नर्तिकाएं अभिनय से कृष्ण और राधा के सनातन प्रेम की अभिव्यक्ति करते हैं तब भक्ति और कला का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। यहाँ के संगीत में प्रख्यात कवि जयदेव के संस्कृत के काव्य गीत को गाया जाता है। यहाँ के संगीत में संस्कृत के शब्द काफी बहुल संख्या में मिलते हैं।

अरुणाचल की जनजातियां नाचने-गाने की शौकीन होती हैं। अतिथि सत्कार से लेकर जीवन की नाना परिस्थितियों के लिए इनके पास नृत्य एवं संगीत होते हैं। पशु बलि और देवताओं की पूजा और नृत्य संगीत का बड़ा महत्व होता है। यहाँ के संगीत में इनकी धार्मिक मान्यताओं का वर्णन मिलता है। इनका संगीत सेदी-मेलो अर्थात् सूर्य एवं चन्द्रमा के द्वारा ब्रह्माण्ड की सृष्टि की कहानी संगीत में मिलती है। इस गीत में सेदी मेलो के द्वारा चन्द्रमा एवं सूर्य को बनाने की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। यह आदी जनजाति गीत का है-

"सेदी मेलो के आने
आमङ मे बेली
यातमान पागा रोङम
सेदी के ना आने
छिटे सीते रेयाङ
बोभप्याङ के इनाम।" (जनपथ दिसम्बर २००६ अंक, पृ. २६)

आदी जनजाति का का दूसरा सबसे प्रसिद्ध लोक-संगीत पदाम न्यासी है। यह लोक-संगीत इस जनजाति की महिलाओं में सबसे प्रसिद्ध है। इस गीत के साथ समूह में नृत्य भी होता है इसे 'पोनुङ' कहा जाता है। इस नृत्य में किसी वाद्ययंत्र का प्रयोग नहीं किया जाता है। पोनुङ एक ऐसे सांस्कृतिक नृत्य को कहा जाता है। जिसमें नर्तक एवं नर्तकियां कीमती आभूषणों को धारण किए होते हैं। इस प्रकार के गीत में महिलाओं की दिनचर्या एवं घरेलू कार्य की व्यस्तताओं का वर्णन रहता है। फसलों में धान से लेकर चावल बनाने तक की प्रक्रिया का इसमें वर्णन रहता है साथ ही कपड़ा बुनने का भी वर्णन रहता है। आदी जनजाति का एक महत्वपूर्ण लोक-संगीत है 'आसी राई-ए गाले-गाले' । इस लोक-संगीत को समूह में मिलकर गाया जाता है। एक लोक गीत का आरंभ करते हैं, और समूह मिलकर इसका अनुसरण करते हैं। आदी जनजाति में 'चोयो गागा' नामक गीत गाया जाता है। जो लोरी है। इस गीत को माताएं-बच्चों को शांत करने के लिए इस गीत को गाती हैं।

इस गीत को गाते हुए महिलाएं अपने शरीर को ऊँचा करके पीठ को हिलाते हुए नृत्य भी करती हैं। अरुणाचल के आदी समाज में इस प्रकार के गीत आज भी गुंजायमान हैं।

हिलमीरी जनजाति का मुख्य त्योहार 'बूरी-बूत' है । इस त्योहार में गीत, संगीत एवं नृत्य को प्रमुखता दी जाती है। इस त्योहार में पारंपरिक नृत्यों के द्वारा मेहमानों का मनोरंजन किया जाता है। गीत के द्वारा लोग अपने मनोभावों को व्यक्त करते हैं। इस त्योहार में बूरी मोजी, बोरी दुरूम इत्यादि नृत्य किए जाते हैं। एक इसी प्रकार का गीत है, जिसमें लोग अपने आप को थिरकने से नहीं रोक पाते।

सिंग्फो जनजाति के उत्सव में रोजमर्रा की जिन्दगी में जो काम करते हैं, उसका ही उपयोग ये नृत्य में करते हैं। घरेलू काम को इस नृत्य के माध्यम से दिखाया जाता है। इस नृत्य में इनके लोक-जीवन की झलक देखने को मिलती है। इस नृत्य में वाद्य यंत्रों के रूप में घंटी का प्रयोग करते हैं। इसमें लोग नृत्य करते हुए गीत भी गाते हैं। नूनू पीपी आदियों की एक महत्वपूर्ण गीत है। इसे गाते हुए महिलाएं नृत्य भी करती हैं। इस संगीत पर केवल महिलाएं ही नृत्य करती हैं। इस गीत का एक प्रयोजन मनोरंजन है। जनजातियों के नृत्य संगीत, लोकगीत का भण्डार काफी विशाल है। इनके जीवन के हर पहलू को इनके नृत्य, संगीत एवं साहित्य से देखा जा सकता है। जनजातीय समाज में भूमण्डलीकरण आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता, एवं बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव के कारण समाज में अनेक परिवर्तन हुए हैं। इस परिवर्तन के बावजूद इन्होंने अपनी परंपराओं, रीति-रिवाज, नृत्यों, लोक-संगीत आदि को बचा कर रखा हैं। परंपरा एवं रीति-रिवाज इनके समाज का दर्पण है।

सहायक ग्रंथ

1. सांवरमल सांगानेरिया, अरुणोदय की धरती पर, हेरिटेज फाउंडेशन, गुवाहाटी, 2014 ई.
2. सांवरमल सांगानेरिया, ब्रह्मपुत्र के किनारे-किनारे, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2007 ई.
3. निरुपमा, भारत के राज्य, सौरभ प्रकाशन, दिल्ली, प्रकाशन, 2011 ई.
4. विष्णु प्रभाकर, एक देश एक हृदय, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 2004 ई.
5. अनंत कुमार सिंह, (संपा.), जनपथ, अंक- दिसम्बर, 2009, आरा, बिहार
6. Osik, N., Folk songs & dances of Arunachal Pradesh, vol. (i)
7. Roy, Sachin, Aspect of padam minyong culture, 1997

हा प्नॅह का री बायार

कुम्सॉह्कुम् सेन्तिएव
हा प्नॅह जॉङ का री बा डॉन् नाम
की नियम रुकॉम् रीति दुस्तूर बाफॅर
ला पेन्नॅह पेंस्खेम डा रीति सेन्शार

बारॉह् जिङफॅर जिङमुत बा हार रुकॉम
वाट् अम् आइलाद् या की बान् खाङ लेन्ति
बारॉह् या की केन्ताइट लुट् शिसेन्डॉ
नामार बान् इम बान् साह् नाम ला का री

बान् नॅह बान् साह् जाइटबेंरिएव ला का जॉङ्
बान् रॉइ बान् पार कल्लेङ बारॉह् सावडॉङ
जिङस्ताद जिङशेम्फाङ जिङक्मेन आइ किन याइङ्
बान्पॉइ शाका थॉङ ङिन तल्लि लाङ फार

माव्ड़ॉङ ब्ला बुह् डा माट्टि की लॉङ शुवा
ना बेन्ता का री जिङइम किला फा
का री का खॅाट् या फी रूह् बाड् या ङा
बान् ट्रेइलाङ बारॉह् बान् रॉइ बाड् बान् पार

केल्ला स्तेप कात्तो जुनॉम काला लेइत
केन्ज्री लॉङम्राव जॉङ ङी बारॉह् ला ब्थात
हा केल्ला मिएट् मेन्ता बारॉह् ङिन येङ
बान् ट्रेइ लाका री हा नॉङरिम बास्खेम

का नेल्सिदा शाबॉङ्
की जिङ्वाइ सेङ खासी
जिङ्वाइ- **116**

महान देश के आँचल में

✍ **अनुवाद - एह्सिङ खिएवताम्**

फल-पुष्पों की भाँति हम
गौरवमय देश के आँचल में
विविध धर्मों, रीति-रिवाजों के
आधार है संविधान जिसके

सारे प्रकार के मतवैभिन्न्य
राहों की बाधा मत बनने दो
देश की प्रभुता और अखण्डता के लिए
झट से इनको दूर कर लो

अपने लोगों के अस्मिता के लिए
सर्वांगीण विकास के लिए
प्रतिभा, निपुणता,उत्साह को प्रवाहित होने
लक्ष्य प्राप्ति हेतु ऐक्यभाव रखेंगे

निशानी है रखी पूर्वजों ने
देश के नाम प्राण न्योछावर कर
देश हमे फिर से बुला रहा
एकता के पथ पर विकास कर

अंधेरी रातों का है अब अंत
गुलामी की सारी जंजीरे सब टूट गयी
नया सवेरा का करें हम स्वागत
परंम वै भव देश बनाने

लालमुनिया के बहाने दरकती जमीन का सच

✍ आलोक सिंह

आन्दवर्धन हिन्दी के उन युवा कवियों में है, जो धीर-धीरे अपनी मुकम्मल पहचान कायम कर रहे हैं। देशभर की अनेक पत्र-पत्रिकाओं तथा अन्य माध्यमों से वे अपनी उपस्थिति दर्ज करते रहे हैं। कवि के नये काव्य संग्रह 'लालमुनिया, घोंसला कहाँ बनाओगी' को बड़े एकाग्र से पढ़ते हुए कहा जा सकता है कि ये कविताएँ कवि के विचारों का परिपोषण करते हुए जीवन के आत्मानुभव को गम्भीरता के साथ व्यक्त करती हैं। पीढ़ियों के बदलते समाज के स्वरूप पर कवि की गहरी दृष्टि है और उसे अभिव्यक्त करने का कवि अपना ढंग हैं, जो समकालीन कवियों से इनकी अलग पहचान निर्मित करता है। कवि की कविताएं अपने समय के उन विषयों को उठाती हैं जो हमसे पीछे छूट चुकी है। कवि की कविताओं में बुनियादी जगहों को पहचनाने और उससे टकराने की क्षमता है और वह सघन सोरोकारों की दहलीज पर बार-बार अपनी कविताओं के माध्यम से दस्तक देती हैं। संग्रह की कविताएँ स्वयं अनुभव की हुई, इंद्रियों के रास्ते जानी हुई दुनिया की कविताएँ है। अनुभूति की निजता और ऐंद्रिकता का यह प्रभाव है कि कवि की निगाहें प्रायः अपने स्थानीयता का दायरा स्वयं से शुरू होकर, परिवार-गाँव-नगर तक जाता तो है, किन्तु नगर में भी आनन्दवर्धन की पहली चिंता स्वयं को, अपने गाँव-घर को ढूंढ़ लेने की है यही कारण है कि इनकी कविताओं में हम परिवेशगत वास्तविकताओं की गहरी उपस्थिति पाते हैं। आनन्दवर्धन की चिंता वस्तुतः एक व्यापक परिप्रेक्षय में अपने परिवेश के बदलते चेहरों की चिंता है। विकास के नाम पर छलांग लगाता आज का मानव पहाड़, नदी, पेड़ पौधों तथा अपनी माटी से दूर होता हुआ संवेदना से रहित होता जा रहा है। संवेदना से रहित होता मनुष्य तथा लालमुनिया के घोंसलें की चिंता ही कवि के भाव को मजबूती देती है तथा उसे ठोस भी बनाती है। आनन्दवर्धन के कवि की निर्मित में उसके भीतर और बाहर की भूमिका है। कवि जिस मध यवर्ग या बौद्धिक समुदाय से आता है, उसके जीवन में बहुत दिखावापन है। वह बाहर जैसा दिखता है, 'भीतर वाला, एक बाहर वाला' की पंक्तियाँ इस भाव-भूमि और चरित्र को सामने लाती हैं। धोखा, धूर्तता, पाखण्ड, छद्म इस कदर मनुष्य का पर्याय बन जाता है कि आदमी कई-कई चेहरों के साथ जीता है। कवि आधारहीन और दिखावे की आधुनिकता को खारिज करता चलता है। वह दो पाटों के भेद को व्यक्त करता हुआ मनुष्य की खोज करता है जिससे हमारी जड़े नीचे तक जा सकें और हमें मजबूत आधार प्रदान कर सकें। 'वे घिर रहे थे' कविता ह्रास होते जीवन-मूल्यों पर चिन्ता व्यक्त करती है और साथ ही साथ ऐसे लोगों की संवेदना का विस्तार करती है जो आज खानाबदोश के रूप में जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। कवि को दुःख है कि आजाद भारत का सपना कुछ और था, लेकिन आजादी मिलने के बाद कुछ दूसरा हो गया। जीवन को चाहिए था

मजबूत आधार, लेकिन मिली सिर्फ आधारहीन सुख-सुविधाएँ । वह अपने समय से प्रश्न करता है कि-

"अभी भी लोग / रैदास की राँप/ कबीर की लुकाठी
तुलसी की कलम / और बूढ़े की ले /
खोज रहे हैं / वे गम पुरा ।"
(कहाँ वे बे गम पुरा, 1)

कवि की कविताओं को पढ़ते हुए पाठक को यह भी लग सकता है कि कवि की कविताएँ नास्टैलिज्या से उपजी कविताएँ है, यह प्रश्न वाजिब भी है पर यह नॉस्टैल्जिया विपरीत परिस्थितियों में राहत भी देती है और संघर्ष करने की ताकत भी अकेली खुरदरी जमीन पर, शहर की जममगाहट से अलग है इनकी कविताओं की जमीन । इसी कारण कविताओं की भावभूमि उसका लोक है, मतलब कवि के आस-पास का जीवन । इन्होंने वहाँ के जीवन और समाज को बहुत करीब से देखा है । अपनी जड़ो से कटने की पीड़ा, इन्हें टीसती रहती है । दरअसल अपने देश और विदेशी जीवन के द्वन्द और तनाव के बीच ही उनकी ये कविताएँ बनी है -

"बदल गया है चौराहा / जहाँ आज पास की
आठ सड़को के / दस गाँवो के लोग / आपस में
नहीं पहचानते किसी को / न ही चीन्हता है
उन्हें चौराहा अब ।
(चौराहा, पृ.१४)

छीजती हुई मानवीयता और समय पर हावी होती बाजारी रंग को बेचौन करती है । चीजों को देखने की उनकी आधुनिक दृष्टि उन्हें आहत करती है और अपने जीये हुए जीवन से जोड़ती भी है । भूमंडलीकरण तथा मूल्यों के विघटन के इस दौर में, संवेदना किस तरह अलग-थलग पड़ती जा रही हैं, ये कविताएँ बखूबी दिखाती है । एक संवेदनशील व्यक्ति किस तरह अपने को हर जगह **मिसफिट** पाता है, किस तरह अकेल पाता है, सारे संघर्षों के बीच, इसकी पूरी कहानी कवि अपनी कविताओं में दर्ज करता चलता है और अपने अराजक होते समय को पकड़ने की कोशिश भी करता है । अपने समय के यथार्थ से जूझती कविताएँ जिरह के लिए बहुत सारे सवाल उठाती हैं । मनुष्य के आपसी संबंधों से लेकर देश, समाज और तथाकथित कानूनों की पड़ताल करती हैं-

"मी लार्ड- /यह बात करता है रोटी की / नहीं
देखता पंचसितारों की ओर / नन्हे टुकड़ो पर
मरता है /इसे दंड दे /जनता ने हर्ष /वनिकी /

कवि मुस्कराया /हँस पड़ी अदालत /और शहर
के बीचों बीच / ऊँचे सलीब पर / ठोंक दिया गया
मुरिम को /ताकि लोग सबक लें / और न लिखें कविता ।"
(मुजरिम, पृ. ३६-३७)

मनुष्य से मनुष्यता तक, संकुचित विचारों से समृद्ध विचारों तक, न्यूनतम से उच्चतम तक, जमीन से आसमान तक, पहाड़ो से पठार तक की यात्रा में परिपक्वता की आवश्यकता होती है । जीवन चारों दिशाओं में फैला हुआ है । कवि को सौन्दर्यबोध देखना आना चाहिए । कवि आनन्दवर्धन पहाड़ी जीवन के सौंदर्य को, उसकी जीवंत जिजीविषा को अपनी लेखनी से और भी अधिक जीवंत बना देते हैं -

"घनेरे चीड़ के पेड़ो/तुम्हारी फूल सी कोमल कलाई /
उँगलियों के बीच में / उलझे फँसे, मिजराब से बादल /
कि छेड़े तार वे आकाश धरती के / फुहारें रागिनी सी
गा रहीं /छा रही बदरी-/ चौत की धुन फैलती है /
चीड़ की चौड़ी हथेली /दे रही है थाप रूनझुन /
गुनगुनाती बज रही पाजेब बूँदों की ।"
(घनेरे चीड़, पृ.७२)

वैश्वीकरण तथा विकास की अंधाधुंध बयार ने पहाड़ी जीवन में विस्थापन और शोषण को और अधिक बढ़ा दिया है । जिसका दर्द चारों दिशाओं में फैल रहा है । पहाड़ों में जीवन हाड़तोड़ मेहनत करने वाले लोगों के दर्द को बयान करती उनकी कविताएँ एक नये सच से रू-बरू कराती हैं -

"पुश्त दर पुश्त /पत्थर दर पत्तर जोड़कर /
उगाते हैं मीठे पानी के सोते /छूते हैं आकाश /
सहते हैं बर्फीली हवा /तूफानी बरसात /और
घर बन जाने पर / फट जाता है का दिल /
आता है भुकंम्प /या लोगों के बेटे पहाड़ छोड़कर /
चले जाते हैं मैदानों में / घर खड़े रहते हैं उदास ।"
(पहाड़, पृ, ५२)

स्त्री के सरोकारों वाले स्त्री जीवन की विषमताएँ और विडंबनाएँ भी कवि को दुःखी करती हैं । आनन्दवर्धन की कविताओं में वह संघर्ष दिखाई पड़ता है, जो स्त्रीत्व की पहचान करा सके

। कवि स्त्री मन, जब अतिरंजना में आकर मनुष्य आस्था और अंधविश्वास का चोला ओढ़ लेता है । तब स्पष्ट है कि उनकी पक्षधरता के दायरे में वो सारी सृष्टियाँ आती हैं जो किसी न किसी कोण से पीड़ित एवं दुःखी हैं । पीड़ितों के यथार्थ की अभिव्यक्ति में कवि सबसे पहले अंधी आस्था पर प्रश्न खड़ा करना उचित समझता है । 'उस समय तुम कहाँ थे' कविता में कवि लिखता है-

"सीता पर क्या क्या गुजरी /वे तो अकेली थीं
अशोकवन में /तब भी तुम न आये /कोई बात
नहीं/ लेकिन आज सब सीता, गोपियों/ और
श्रद्धा के घरो से / उठता हैं धुँआ / और बाहर
निकलती है सिन्दूर भरी लाश / तुम भी तुम नहीं आते ।"
(उस समय तुम कहाँ थे, पृ.**30-31**)

कवि की कविताएँ स्त्री व्यवहार के ऐसे उदाहरणों को सामने लाने से नहीं चूकती जो स्त्री समाज उसकी यौन- सुचिता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करती हैं ।

आज का कवि इस बात को अच्छी तरह जानता है कि पर्यावरण पर गहराया संकट मानवीय अस्तित्व का संकट है । आज उसे अस्मिता के साथ-साथ अस्तित्व चिन्ता भी है जो प्रकृ ति से जुड़ी है । इसलिए आनन्दवर्धन 'मानस गंध' कविता के द्वारा पृथ्वी के नये परिवेश को उभारते हुए प्रकृति के प्रति अपनी संवेदनशीलता का परिचय देते हैं -

"चाँद ने कहा / ना भाई ना / तुम मनुष्य जाति के
लिए / मेरे पास जगर नहीं है / न घर के लिये /
न बगीचे के लिए / न झील के लिए / तुम / घरों, बगीचों
और झीलों के साथ /ले ही आते हो / रंग-बिरंगी
पताकाएँ / लाल पीली आग / धुमैला धुआँ /तुम्हें
क्या पता / कि पृथ्वी की आग / धुएँ और धमाकों से
जलने लगी है मेरी आँखें ।" (मानुस गंध, पृ. ६३)

आज की कविता एक सामान्य मनुष्य के सुख-दुख घर- परिवार, रीति-रस्म, आस-पास के परिवेश तथा दैनिक जीवन पर पड़ने वाले सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रभाव को चित्रित करती है । आज भूमंडलीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तावाद, संप्रदायवाद आदि के बीच मानवीय संवेदना क्षीण प्रतीत हो रही है ।इसलिए 'तुम्हारे हिस्से का देश' कविता मानवीय संवेदना को बचाने के लिए गुहार लगाती है-

"देस के अन्द कितने ही देश हैं / कुछ छोटे कुछ बड़े/

और कुछ ऐसे भी / जो कहीं दिखते ही नहीं/ सबके हैं
अपने अपने देश /ठीक वैसे ही जैसे अपने अपने /
आकाश को बड़ा करने के लिए / दूसरे के आकाश
को कतर देना तो ठीक नहीं ।”

(तुम्हारे हिस्से का देश, पृ.**111**)

इस प्रकार आनन्दवर्धन की कविताओं में रिश्तों की दरकती जमीन है, रिश्तों की उजास के खो जाने का दर्द है, दायित्व न निभा पाने की कसक है, प्रवास की पीड़ा है । लोक और जीवन की गहरी समझ उनकी कविताओं को मजबूती प्रदान करती हैं । भाषा के स्तर पर इनकी कविताएँ सहज सरल हैं । इनमें सादगी है उलझाव नहीं । भाषा और शिल्प के अलावा, अंतर्वस्तु का नयापन भी ध्यान खींचता है । उनकी कविताओं में या तो व्यक्त यथार्थ नया होता है अथवा उसको देखने का दृष्टिकोण । ‘बिलासपुरिया मजदूर’, ‘अनुत्तरित’,तथा ‘हम असली केसर बेचने वाले हैं’ जैसी कविताएँ कवि की संवेदनशीलता, विचारों की गहनता और भावों की व्यापकता का साक्ष्य हैं । हाँ, कुछ कविताएँ ‘नाच बन्दरिया’, ‘भूख’ ‘तुम्हारी चुप्पी’ जैसी कविताओं के शीर्षक के अनुरूप संवेदनाएँ उभर नहीं पाती है अर्थात् कमजोर प्रतीत होती हैं । फिर भी अपने पहले काव्य संग्रह में ही आनन्दवर्धन ने निजी पहचान बनाई है । उम्मीद है कि वे इस पहचान को अगले मुकाम तक पहुँचाएंगे । आज यथार्थ जटिल से होता जा रहा है उस बदलते यथार्थ को और तल्खी के साथ कवि को देखने की जरूरत है, साथ ही साथ उसे विश्वफलक पर घटित हो रही अमानवीय संदर्भों को भी अपनी कविताओं के माध्यम से स्वर देने की जरूरत हैं ।

कब्ज : कारण और निवारण

✍ डॉ. मदन मोहन सिंह

कब्ज से जितने बुद्धिवादी ग्रस्त हैं, उतने अन्य रोग से नहीं । कब्ज का अर्थ है समय पर मल-त्याग न होना भोजन पचने के बाद उत्पन्न मल पूर्ण रूप से न निकलना । बार-बार भिन्न-भिन्न समय खाये गये भोजन से अलग-अलग समय पर तैयार होने वाला मल एक बार शौच जाने पर पूर्ण रूप से नहीं निकलता । बचा हुआ मल आंतों में इक्टठा होता रहता है आंतों में पड़ा मल अपनी सड़न और बदबू शरीर की प्रफुल्लता, उत्साह को समाप्त कर देता है । मन में ग्लानि, आलस्य भाव, मूँह से पानी और दुर्गन्ध आना,बुखार सा प्रतीत होना, अरूचि, सिर दर्द आदि अनेक लक्षण प्रकट होते हैं । लगातार कब्ज रहने से बवासीर (Piles) और गृधसीवात (Scitica)

कब्ज के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :

(1) खान-पान की गड़बड़ियाँ- पार्टी में या घर पर चटपटा, स्वादिष्ट भोजन होने पर लोग अधिक खाते हैं । पेट का ध्यान न रखकर बिना चबाये, बिना भूख खाना, स्वाद में अधिक खाना, बाद में ठंडे पेय पीना ।

(2) शौच रोकने की आदत- कार्य की व्यस्तता, मनोरंजन में लीन होने से मल त्याग की इच्छा रोक लेते हैं । इससे कब्ज बनती और पुरानी हो जाती है । पेट में गैस (वायु) भरने से पेट फूलने लगता है ।

(3) शारीरिक श्रम का अभाव- बुद्धिजीवी और फनवान प्रायः शारीरिक श्रम नहीं करते, इससे कब्ज रहती है ।

(4) विश्राम की कमी- अधिक-भाग-दौड़ में व्यस्त रहने से भीतरी अंगों को बराबर काम करने का अवसर नहीं मिलता इससे कब्ज होती है ।

(5) मानसिक तनाव-चिंता, अशुभ विचार, वासनामय विचारों में लिप्त रहना, निरन्तर सोचते रहने से भीतरी अंगों में तनाव बना रहता है इससे कब्ज होता है ।

(6) मादक द्रव्यों का सेवन-शराब, तम्बाकू, सिगरेट, बीड़ी, अफीम, चाय आदि नशीली चीजों के सेवन से शरीर का स्नायु शिथिल हो जाता है जो कब्ज करता है ।

(7) पानी की कमी-पानी कम पीने से कब्ज होती है । प्रातः शौच से पहले पीयें ।

(8) आँतों की दुर्बलता- कब्जदूर करने के लिए बार-बार औषधियाँ और चूर्ण लेने से आँते

अपना काम करना बन्द कर देती हैं । जिससे आँतों में ढीलापन और दुर्बलता पैदा होती है ।

(9) शौच जाने में शीघ्रता-शौच करते समय शीघ्रता नहीं करनी चाहिए । कभी शौच आने में देर लगती है, कुछ देर रूकने, प्रयत्न करने से शौच फिर आने लगती है ।

(10) स्थान की स्वच्छता-शौच स्वच्छता और साफ स्थान पर सरलता से आता है ।

कब्ज का निवारण कैसे करें ?

कब्ज स्वयं कोई रोग नहीं है, बल्कि दैनिक दिनचर्या की अव्यवस्था के फलस्वरूप मल पूरा नहीं निकलना । कब्ज के जो कारण बताये गये हैं, उन सब को दूर करना चाहिए । कच्चे और उबली हुई सब्जियाँ, फल अधिक खाने चाहिए- जितनी बार खाना खायें, शौच की इच्छा न होने पर भी उतनी बार शौच जायें । नित्य ऐसे करने पर शौच आने लगेगी । शारिरिक श्रम करें, सूर्योदय से पहले उठें भोजन प्रसन्न मुद्रा में करें । सप्ताह में एक दिन फलाहार अल्पाहार पर रहना चाहिए, इससे आँतों को आराम मिलता है । बुद्धिजीवी जब तक निष्पक्ष, न्याय संगत विचारधारा नहीं रखेंगे, ये रोग उनका पीछा नहीं छोड़ेगा । पच्यकारक अन्न सेवन करने पर ये रोग नहीं होता है।

पूर्वोत्तर भारत के संत एवं समाज सुधारक महापुरूष श्री माधवदेव

✍अजित कुमार

पूर्वोत्तर भारत में भक्ति आंदोलन का श्रेय श्रीमंत शंकरदेव को जाता है । श्रीमंत शंकरदेव ने भक्ति साहित्य से पूर्वोत्तर भारत की जनता को परिचित कराया । जिस प्रकार भक्ति आंदोलन का संपूर्ण भारत में भी उद्‌भव व विकास देखा जा सकता है । जहां एक तरफ भक्ति आंदोलन को आगे बढ़ाने व प्रचार-प्रसार करने में वल्लभाचार्य, रामानंद, तुलसीदास, कबीरदास, सूरदास आदि भक्त व संतो को श्रेय जाता है । इन दोनों महापुरूषों ने उत्तर भारत की भक्ति तीर्थयात्रा और संतसंग के लिए भारत के कई राज्यों व प्रदेशों में भ्रमण के दौरान इनकी मुलाकात कबीर, चैतन्य, हरिव्यास आदि संतों से हुआ । शंकरदेव और माधवदेव का भक्ति का आधार, 'नववैष्णव भक्ति मार्ग' है । 'नववैष्णव भक्ति' को ही दोनों महापुरूषों ने पूर्वोत्तर में जन-जन तक पहुंचाने को कार्य किया । शंकरदेव व माधवदेव ने भागवत को आधार बनाकर 'एक शरण' अर्थात एक देव की स्तुति की । 'एक शरणीयाभागवती नाम धर्म' का आधारभूत भागवत है । इसे महापुरूषियों ध ार्म भी कहा जाता है ।

शंकरदेव एवं माधवदेव ने 'सत्र' की भी स्थापना की । वस्तुतः वैष्णव पीठ स्थान है । इसी सत्र में कीर्तन-भजन भी होता है । इसलिए सत्र को कीर्तनघर या नामघर भी कहा जाता है । ऐसा माना जाता है कि सत्र के होने से असम में पंचायती व्यवस्था आ गई थी । असम में अनेक जाति, धर्म, संप्रदाय का स्थल होने के कारण यहां पर धर्म प्रचार करना बहुत ही मुश्किल था । इसलिए दोनों महापुरूषों ने सत्र के माध्यम से सबके लिए सुयोग भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया, जिसमें ऊंच-नीच, छुआछूत आदि का रोक न हो । सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति भिन्न होने के कारण श्रीमंत शंकरदेव एवं माधवदेव दोनों को भक्ति के प्रचार-प्रसार में समस्याएँ उत्पन्न हुई, लेकिन इन कठिनाइयों के बावजूद उन्होंने भक्ति का सरल व आसान मार्ग सबके लिए खोला ।

असमिया भक्ति साहित्य में मूलतः दो प्रकार के कवि दिखाई देते हैं- वैष्णव कवि और वैष्णवेत्तर कवि । वैष्णव कवियों में शंकरदेव, माधवदेव, अनंत कंदली, राम सरस्वती, कवि रत्नाकर, श्रीधर कंदली, गोपाल शरण द्विज, गोपालदेव, रामशरण ठाकुर आदि आते हैं । वैष्णवोत्तर कवियों में पीतांबर,मनकर, दुर्गावर कायस्थ,नारायणदेव आदि है । वैष्णवोत्तर कवियों में विशेषतः पौराणिक कथाओं तथा मनसा देवी से संबंधित कथाओं का विस्तार दिया गया है ।

माधवदेव का जन्म सन् **1489** में असम के लखीमपुर के नारायणपुर नामक गांव में हुआ था । इनके पिता का नाम गोविंद गिरी और माता का नाम मनोरमा देवी था । माधवदेव का बालपन बहुत कष्ट में बीता । इनकी एक उर्वशी नामक बहन भी थी, जिसका विवाह गदापानी नामक एक युवक से हुआ । माधवदेव का बचपन एवं किशोरावस्था हरिसिंह बोरा नामक गोविंद गिरी के मित्र के साथ व्यतीत हुआ । माधवदेव के पिता गोविंदगिरी का पूर्व निवास स्थान वान्डुका था, जो वर्तमान

में बांगलादेश का रंगपुर जगह है, यहीं पर प्रथम पत्नी से उनका दामोदर नामक पुत्र का जन्म हुआ । माधवदेव की पारंभिक शिक्षा वांडुका में ही गोवापन का व्यवसाय भी किए । व्यवसाय के समय ही यही की कन्या से इनका तिलक हुआ । ऐसा माना जाता है कि एक दिन इनकी माँ का स्वास्थ अचानक बिगड़ गया, जिसके कारण व्यथित होकर माधवदेव ने किसी देवी की मनौती मांगी कि यदि मां का स्वास्थ ठीक हो जाएगा तो वह बलि चढ़ाँगे । ठीक ऐसा ही हुआ ।माँ का स्वास्थ ठीक हो गया तो वह अपने बहनोई से बलि चढ़ाने के लिए व्यवस्था करने के लिए बोले । बहनोई चूंकी शंकरदेव के वैष्णव धर्म के उपासक थे, तो उन्होंने माधवदेवा को समझाया । जब मादवदेव न माने तो उनके बहनोई उन्हें श्रीमंत शंकरदेव से मिलवाया और बहुत समय तक उन दोनों का दार्शनिक तर्क चला और बाद में माधवदेव को अपनी गलती का एहसास हुआ । माधवदेव पहले शाक्तधर्मी होने के कारण बलि-विधान पर विश्वास रखते थे, इसके दंभ पर ही उन्होने शंकरदेव से तर्क शुरू किया था । माधवदेव का इस दंभ का खंडन शंकरदेव ने किया और उस दिन से माधवदेव ने महापुरूष शंकरदेव को अपना गुरू बना लिया ।

माधवदेव शंकरदेव के शिष्य बनने के उपरांत दोनों गुरू-शिष्य ने मिलकर संपूर्ण असम (पूर्वोत्तर) में नववैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार और भी तेजी से करने लगे । माधवदेव शंकरदेव के प्रिय शिष्य में से एक है । असम में जिस समय भक्ति आंदोलन का उदय हो रहा था, उस समय यहां पर आहोमों की शासन सत्ता स्थापित थी । एक तरफ भारत में मुगलों का शासन था, तो दूसरी तरफ असम में आहोमों की । आहोम राजा ने श्रीमंत शंकरदेव एवं माधवदेव को भक्ति के प्रचार-प्रसार में बहुत बाधाएँ दी । आहोमों द्वारा शंकरदेव एवं माधवदेव को बार-बार संदेश दिया जाता था । एक दिन आहोम शासन से दुखी होकर शंकरदेव अपने सगे संबंधियों के साथ माधवदेव के मृत्यु के पश्चात **1568-1596** तक माधवदेव ने उनकी धार्मिक विचार के रूप बने और लगातार वैष्णव भक्ति का प्रसार करते रहे । माधवदेव को भी अपने गुरू शंकरदेव के भांति एक स्थान से दूसरे स्थान तक भागना पड़ता था । कोच राजा रघुदेव ने इन्हें बरपेटा से विस्थापित किया, वहां पर भी माधवदेव को रहने नहीं दिया । रघुदेव राजा से परेशान होकर माधवदेव कोचबिहार चले गए । कोच बिहार के राजा नरनारायण के पुत्र लक्ष्मीनारायण ने माधवदेव की भक्ति से प्रभावति होकर उनका सम्मान किया और उनकी भक्ति भावना को राज भक्ति के रूप में स्वीकृति प्रदान की ।

माधवदेव ने भी अपने गुरू श्रीमंत शंकरदेव की तरह ही गीत, काव्य, नाटक (अंकिया एवं झुमुरा) के साथ-साथ अनुवाद भी किए हैं । महापुरूष माधवदेव की रचनाएँ इस प्रकार है -

गीतः **1**. बरगीत **2**. भटिमा

काव्यः **1**. नामघोषा **2**. राजसुय यज्ञ

नाटकः **1**. अर्जुन भंजन **2**. चोर धरा **3**. भूमि लेटूवा **4**. पिंपरागुछूआ **5**. भोजन व्यवहार **6**. रास झुमूरा **7**. कुटूरा खेलुवा **8**. भूषण हेरूवा

अनूदित काव्यः**1**. जन्म रहस्य **2**. भक्ति रत्नावली **3**. नाम मालिका **4**. रामायण (उत्तराखंड) आदि

इनके ग्रंथ हैं ।

समाज सुधारक माधवदेव ने अपनी भक्ति साहित्य के माध्यम से समाज में व्यापप्त कुरीतियों, धार्मिक बाह्याडम्बर आदि का विरोध किया है । वे अपने साहित्य के द्वारा सामाजिक विषमता, कटूता छुआछूत सभी पर प्रहार करते नजर आते हैं । समाजिक समता की स्थापना में माधवदेव किसी भी जाति समुदाय की वकालत न कर समुच्चय जाति के लोगों के लिए भक्ति मार्ग की वकालत करते हैं ।वह बताते हैं कि भक्ति एवं साधना से सभी व्यक्ति भगवान तक पहुँच सकते हैं, न कि किसी धर्म या जाति में जन्म लेने से ।

"जाती अनुग्र धर्म ज्ञाने कृष्ण देवतार ।
नुही अनुग्रह कारण ।
किन्तु भक्तिभावे अति भजोक उजात जाती
टाते से संतोष्ट नारायण ।।"

माधवदेव मनुष्य के अंदर व्यापत इन सभी अवगुणों को गलत मानते हैं । माधवदेव मानवीय मूल्यों की बात करते हैं । वे नैतिकता को महत्व देकर दया, प्रेम, परोकार, क्षमा, सत्य, अहिंसा, की बात करते हैं । यदि देखा जाए तो उत्तर भारत की भक्ति आंदोलन सिर्फ भक्ति आंदोलन तक ही सीमित है, किंतु असम का भक्ति आंदोलन से असमिया समाज में व्यापप्त सभी कुरीतियों का माधवदेव और शंकरदेव दोनों ने विरोध किया । माधवदेव सामाजिक विषमता को दूर करके भक्ति को स्थापित करने का काम किए हैं । उत्तर भारत में समाज सुधार के कार्य में संत साहित्य एवं संत भक्तों को जाता है, जिसमें कबीर, रैदास, दादूदयाल जैसे अनेक संत है, किंतु पूर्वोत्तर में 'नववैष्णव भक्ति' के साथ यह कार्य करते नजर आते हैं । माधवदेव यही असमिया भक्ति साहित्य की शेष साहित्य से अलग और विशेष बनाती है । यही कारण है कि माधवदेव एवं शंकरदेव को गूरू, समाज सुधारक, महापुरूष आदि शब्दों से सम्मानित किया गया है । माधवदेव की काव्य एवं साहित्य की भाषा ब्रजबुली या ब्रजावली है । महापुरूष माधवदेव के बरगीतों में सूरदास की तरह ही श्री कृष्ण के वात्सल्य भक्ति दिखाई देता है । इनके बरगीत लयबद्ध एवं रागबद्ध है । बरगीतों की असमिया समाज में महत्वपूर्ण स्थान है । बरगीतों को उच्च कोटि का गीत माना जाता है ।इनकी बरगीतों की संख्या 7 मानी जाती है । माधवदेव की सबसे महत्वपूर्ण रचना 'नामघोषा' है । माधवदेव ने अपने साहित्य एवं विचार से असमिया समाज को उच्च स्थान प्रदान की है ।

संदर्भ ग्रंथः

1. असमिया भक्ति साहित्यः शंकरदेव एवं माधवदेव
2. द्विभाषी राष्ट्र सेवक, अंक २, जून **2019**
3. समन्वय पूर्वोत्तर

हिन्दी एवं मातृभाषा : वैचारिक पृष्ठभूमि

✍ राजेन्द्र कुमार राम

कवि भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने कहा था – 'निज भाषा उन्नति अहै. सब उन्नति को मूल, बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय के सूल ।' अर्थात अपनी भाषा की उन्नति ही सभी उन्नति की जड़ है । अपनी भाषा ज्ञान अभाव के हृदय की पीड़ा को मिटाया नहीं जा सकता । यहाँ कवि ने अपनी भाषा, निज भाषा या मातृभाषा की वकालत की है । अब प्रश्न यह उठता है कि अपनी भाषा किसे कहा जाए ? उस भाषा को जिस भाषा के आंगन में शिशु जन्म लेता है और बोलना सीखता है या वह भाषा जिसे बोलना सिखाया जाता है या वह भाषा जिसके परिवेश में उसे जानबुझ रखा जाता है और सीखने का उसके उपर मानसिक दवाब बनाया जाता है । मेरे विचार में वह भाषा अपनी कहलाएगी जिस भाषा में कोई बालक सबसे पहले बिना किसी रोकथाम और लाज-लगाम के बोलना आरम्भ करता हैं । वह मातृभाषा या स्थानीय भाषा कोई भी हो सकती है जिस भाषा में बालक के परिजन हमेशा बोलते हैं । कभी-कभी आपसी परिवेश का बालक पर इतना प्रभाव पड़ता है कि वह उसकी अपनी भाषा बन जाती है और उस भाषा का प्रयोग उसके लिए सहज हो जाता है ।

दरअसल भाषा मन के विचारों का आदान-प्रदान करने का एक साधन मात्र ही है । जिस भाषा में अपने मन की भावनाओं को सही ढंग से दूसरे तक पहुँचाया जा सके उसी भाषा को किसी व्यक्ति विशेष की अपनी भाषा कहा जा सकता है । यदि किसी भाषा में संप्रेषण की भावना व्यक्त करने की क्षमता का अभाव हो तो वह कतई भाषा की श्रेणी में नहीं आ सकती । भाषा का प्रभाव ही है जिसका प्रयोग मात्र से ही व्यक्ति की पहचान बन जाती है । भाषा में जो आत्मीयता होती है । वह किसी और चीज में नहीं होती । इसके उदाहरण हमें कई स्थानों पर देखने को मिल जाते हैं जब किसी दूर दराज इलाके, राज्य अथवा विदेशों में अपने भाषा-भाषी के लोग मिल जाते हैं तो उनके साथ आत्मीयता का भाव अपने आप जागृत हो जाता है । भले ही उस व्यक्ति को हम जानते न हों, वह हमारे गाँव-शहर का रहने वाला न हो लेकिन भाषा के प्रयोग मात्र से वह हमारा अपना सगा-संबंधी बन जाता है । वह भाईचारा किसी और भाषा में देखने को नहीं मिलेगा । किसी और भाषा में आप बात करके अपना काम तो चला सकते हैं लेकिन उस भाषा में वैसी आत्मीयता का बोध नहीं हो सकता जिस भाषा में आप हमेशा बोलते हैं ।

आज हमारे देश में सैंकड़ों भाषाएं बोली जाती हैं । जिनमें हजारों की संख्या में बोलियाँ भी हैं । कुछ भाषाएँ और बोलियों का अंत प्रतिवर्ष हो रहा है और इसकी संख्या धीरे-धीरे घटती जा रही है । देश की आजादी के बाद मात्र पंद्रह भाषाओं को संविधान की आठवीं अनुसूची में

अंगीकार किया गया था । परंतु बाद में इसमें संशोधन करके कुल २२ भाषाओं को मान्यता मिली । आज भी भाषा के नाम पर आन्दोलन जारी है जिसको संवैधानिक मान्यता देने के लिए प्रयास किये जा रहे हैं । ऐसा प्रयास अपनी भाषा के प्रति आत्मीयता और सजगता का बोधक है जो भाषा के लिए शुभ संकेत है । लेकिन भाषा का नाम लेकर सीर्फ कोरी राजनीति करना उचित प्रतीत नहीं लगता । भाषायी भिन्नता दिखाकर राज्य, शहर और गाँव बांटने का प्रयास किए जा रहे हैं जो हमारी एकता के लिए खतरा है । भाषा एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को जोड़ने का साधन होता है इसमें बाधा उत्पन्न करना उचित नहीं । ऐसी भावनाएं देश को जोड़ने की अपेक्षा तोड़ने में अधिक महत्वपूर्ण होती हैं जिससे सभी को बचने का प्रयास करना चाहिए ।

हिन्दी भाषा आजादी के पूर्व और आजादी के बाद भी बोली जाती है । आजादी के पूर्व हिन्दी ने देश को एकजुट करने का प्रयास किया और सफल भी हुई । महात्मा गाँधी ने हिन्दी के माध्यम से ही देश में असहयोग आन्दोलन चलाया और जिसमें देश के प्रत्येक प्रांतों के लोगो ने भाग लिया । हिन्दी के माध्यम से ही देश में एकता आयी और अंग्रेजी दासता से हमें आजादी मिली। गांधीजी स्वंय गुजराती भाषी थे लेकिन उन्होने हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने का भरपुर योगदान किया । इनके अलावा कविगुरू रविन्द्र नाथ टैगोर जो मूल रुप से बंगला भाषी थे उन्होने भी हिन्दी का समर्थन किया । ऐसे कई हिन्दीत्तर भाषीयों के प्रयास के कारण ही हिन्दी को देश में पूर्ण समर्थन मिला । आजादी के उपरांत संविधान में हिन्दी को राष्ट्र की प्रमुख भाषा का गौरव प्रदान किया गया और इसे राजभाषा के रूप स्वीकार किया गया । हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए देश के कोने-कोने में कई संस्थाएं खोली गई । कई लोगो ने अपने-अपने राज्यों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए अपना जीवन लगा दिया । वे हिन्दी के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ देश में एकता लाने का भी काम करते रहे लेकिन संयोग देखिए उनके सभी प्रयासों पर आज जैसे सैंकड़ों घड़े पानी डाला जा रहा है । आज हिन्दी का वह स्वरूप बदल सा गया है जो हिन्दी पहले देशवासियों को आपस में जोड़ने का काम करती थी न जाने आज क्यों लोग उसे तोड़ने के लिए प्रयोग कर रहे हैं । आजादी से पूर्व हिन्दी के नाम पर किसी राजनीति का आभाव था लेकिन आजादी के बाद इसमें राजनीति ने अपनी पकड़ बना ली । आज हिन्दी के नाम पर देश को विभाजित करने की कुंठित मनोविकार को हवा दी जाने लगी है । ऐसा प्रतीत होता है कि मानो हिन्दी बोलने वाले देश के दुश्मन हो गए हैं ।

संसार के सभी स्वतंत्र राष्ट्रों का एक राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय गीत, एक भौगोलिक सीमा, एक संविधान, एक प्रतीक चिन्ह तथा एक धर्म और एक भाषा होती है । भारत का अपना कोई राष्ट्रधर्म नहीं है इसलिए यहाँ धर्मनिरपेक्षता की बात स्वीकार की जाती है लेकिन राष्ट्रभाषा के नाम पर यहाँ कोई एकमत नहीं हो पाया है क्योंकि संविधान में स्वीकृत सभी बाइस भाषाओं को राष्ट्रभाषा

माना गया है । अब जिस देश में बाइस भाषाएँ प्रचलित हों उनमें कैसे किसी एक भाषा को देश की प्रमुख राष्ट्रभाषा माना जाए । हिन्दी देश की राष्ट्रभाषा है इसे देश की प्रमुख भाषा या राजभाषा मानने में बहुत से लोगो को ऐतराज है । हिन्दी भाषा को भारत के संविधान की धारा **343** के उपनियम (**1**) में राजभाषा के रूप में स्वीकृति प्राप्त है जहाँ यह स्पष्ट उल्लेखित है कि -"संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी ।" संविधान ने अनुछेद ३५० और ३५१ के तहत भारत संघ की राजभाषा का दर्जा विधिक रूप से दिया है । संविधान में हिन्दी के लिए दृढसंकल्प के उल्लेख के बावजूद और हिन्दी सेवी तमाम सरकारी संस्थानों और उपक्रमों के बावजूद हिन्दी को लेकर हम ज्यादा आगे नहीं बढ सके हैं । हिन्दी राष्ट्रभाषा के साथ-साथ संघ की राजभाषा भी है इसे सभी को स्वीकार करना ही होगा । सिर्फ हिन्दी बोलने मात्र से काम नहीं चलेगा बल्कि इसमें लिखना-पढना भी भारत के सभी नागरिकों को आना चाहिए । तभी जाकर हम कह सकते हैं कि भारत जैसे एक स्वतंत्र देश की एक स्वतंत्र भाषा या राष्ट्रभाषा भी है ।

कुछ लोगों का तर्क है कि हिन्दी अथवा प्रादेशिक भाषाएं पढने से क्या लाभ । हमें काम तो अंग्रेजी में ही करना होगा, वैसे भी अंग्रेजी विश्व भाषा है जिसके बिना हमारा काम नहीं चल सकता । जो काम बाद में करेंगे उसे अभी से करने में क्या बुराई है । वैसे लोगो से मेरा सीध ा और सरल प्रश्न है कि क्या अंग्रेजी आपकी जन्मजात भाषा है । क्या आप बचपन से अंग्रेजी के सहारे बड़े हुए हैं, क्या आपने सबसे पहले अंग्रेजी में रोना और हंसना सीखा । क्या आपने अपनी भावनाओं को सर्वप्रथम अंग्रेजी में ही व्यक्त करने का प्रयास किया । कितने लोगो का उत्तर हाँ में होगा आप कल्पना कर सकते हैं । कुछ लोग अंग्रेजी भाषा में बोलना अपनी शान समझते हैं उनकी बात छोड़ दीजिए ऐसे लोगो की संख्या बहुत कम है । आज जिस अंग्रेजी को हम विश्व भाषा मानते हैं उसे विश्व भाषा बनने में सैकड़ो वर्ष लग गए । हमने अपनी भाषा को सीखने और उसके विकास में कितना समय दिया है कभी इसपर विचार किया है । हमें जापान जैसे छोटे देश से उदाहरण लेना चाहिए । उनकी देशभक्ति को हमें सलाम करना चाहिए । उनकी भाषा के प्रति लगाव से सबक लेना चाहिए । यदि संविधान के प्रति हमारी निष्ठा हैं तो उसमें उल्लेखित सभी बातों पर अमल करना हमारा कर्तव्य बन जाता है । संविधान में ही हिन्दी को राष्ट्रभाषा के साथ-साथ राजभाषा का दर्जा प्राप्त है । हमें हिन्दी में देश के सारे काम करने होंगे जो हमारा कर्तव्य है । यह सिर्फ हमारी सरकार का ही कर्तव्य नहीं कि वह हमें बार-बार हिन्दी में काम करने की सलाह दे । हमें अपने कर्तव्य स्ययं निश्चय करने होंगे । हिदी के साथ-साथ देश की प्रादेशिक भाषाओं के उत्थान के लिए भी हमें काम करने की आवश्यकता है । उसे हमें अपने व्यवहार में लाना होगा ।

हिन्दी भाषा में कविता, कहानी, नाटक, निबंध, आलोचना, आत्मकथा और उपन्यास जैसे

साहित्यों की भरमार है इसमें कोई संदेह नहीं कि हिन्दी का विपुल साहित्य भंडार है । लेकिन इसमें अन्य विषयों के साहित्यों का भी लेखन करने की आवश्यकता है । इसमें विज्ञान, तकनीकी, चिकित्सा और वाणिज्य से जुड़े विषयों से लेकर आधुनिक विषयों में भी मूल लेखन करने की आवश्यकता है तभी इसे रोजगारपरक भाषा बनाया जा सकता है । जिस भाषा में रोजगार देने की क्षमता का अभाव हो उस भाषा को कौन पढ़ना चाहेगा । हिन्दी भाषा के विद्यार्थी हिन्दी साहित्य में तो अच्छे होते हैं लेकिन अन्य विषयों मे वह कच्चे रह जाते हैं । उन्हें अन्य विषयों में उपेक्षा का सामना करना पड़ता है । यदि हिन्दी माध्यम से उन्हे सभी विषयों की पूरी शिक्षा प्रदान की जाए तो उन्हे अन्य विषयों का भी समुचित ज्ञान मिलेगा । हिन्दी भाषी क्षेत्र राज्यों को छोड़कर अन्य राज्यों में हिन्दी सिर्फ एक भाषा के रूप में दसवीं/ बारहवीं कक्षा तक ही पढाई जाती है । जिसके बाद विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा के लिए अंग्रेजी रूपी बैसाखी का ही सहारा लेना पड़ता है । जो विद्यार्थी अंग्रेजी माध्यम से पढते हैं उन्हे तो आगे की पढाई जारी करने में सहूलियत होती है लेकिन हिन्दी भाषी अथवा अन्य भाषा-भाषी वालों के सामने समस्या उत्पन्न हो जाती है । क्योंकि हिन्दी अथवा अन्य भाषा में वह साहित्य उपलब्ध नहीं होता । इस समस्या को हमें गंभीरता से लेते हुए उसके निराकरण का उपाय जल्द करना होगा । तभी जाकर हम हिन्दी भाषा और इस भाषा को पढने वालों के प्रति सच्चा न्याय कर सकते हैं । यह सरकार के साथ-साथ हमारा भी उत्तरदायित्व है कि हिन्दी को समृद्ध बनाया जाए ।

कभी-कभी हमारे ध्यान में कुछ बातें नहीं आतीं और हम उनकी उपेक्षा करते जाते हैं और एक समय आता है जब मन मसोस कर रह जीते हैं कि काश पहले सोचा होता । भाषा के साथ ही ऐसा ही कुछ होता है । भाषा में दैनंदिन संस्कृति का स्पंदन और प्रवाह होता है । वह जीवन की जाने कितनी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, उसके अभाव की कल्पना उतनी ही डरावनी है । भाषा की मृत्यु के साथ एक समुदाय की पूरी की पूरी विरासत ही लुप्त होने लगती है । कहना न होगा कि जीवन को समृद्ध करने वाली हमारी सभी महत्वपूर्ण उपलब्धियां जैसे-कला, पर्व, रीति-रिवाज आदि सभी जिनसे किसी समाज की पहचान बनती है उन सबका मूल आधार भाषा ही होती है । किसी भाषा का व्यवहार में बना रहना उस समाज की जीवंतता और सृजनात्मकता को संभव करता है । आज के बदलते माहौल में अधिसंख्य भारतीयों द्वारा बोली जाने वाली हिंदी को लेकर भी अब इस तरह के सवाल खड़े होने लगे हैं कि उसका सामाजिक स्वास्थ्य कैसा है और किस तरह का भविष्य आने वाला है ।

हिंदी के बहुत से रूप हैं जो उसके साहित्य में परिलक्षित होते हैं पर उसकी जनसत्ता कितनी सुदृढ़ है यह इस बात पर निर्भर करती है कि जीवन के विविध पक्षों में उसका उपयोग कहाँ, कितना, किस मात्रा में और किन परिणामों के साथ किया जा रहा है । ये प्रश्न सिर्फ हिंदी

भाषा से ही नहीं भारत के समाज से और उसकी जीवन यात्रा से और हमारे लोकतंत्र की उपलब्धि
ा से भी जुड़े हुए हैं । वह समर्थ हो सके इसके लिए जरूरी है कि हर स्तर पर उसका समुचित उपयोग हो । वह एक पीढी से दूसरे तक पहुंचे, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढे, हमारे विभिन्न कार्यों का माध्यम बने, विभिन्न कार्यों के लिए उसका दस्तावेजीकरण हो, और उसे राजकीय समर्थन भी प्राप्त हो । हिन्दी अथवा क्षेत्रीय भाषाओं में बड़ी उपाधियाँ प्राप्त करने मात्र से वह सामर्थ्यवान नहीं हो सकेगा जबतक उसका समुचित उपयोग न हो । हमें अपनी भाषा की कमियों को दूर करने का प्रयास करना है न कि उसकी कमियाँ गिनाना । हम वह कहावत तो सुनते है कि दूसरे की ओर एक उंगली करके कमियाँ दिखाते हैं, जबकि हमारी ओर तीन अंगुलियाँ मुड़ी रहती हैं जिसे हम नहीं देखते । हर भाषा में कोई न कोई कमी अवश्य होती है और उसे दूर करना उस भाषा को बोलने वालों का दायीत्व होता है । इसे अगर अभी दूर नहीं किया गया तो वह समय दूर नहीं जब अपनी भाषा जानने वालों की संख्या भी कम हो जाएगी और इसे आनेवाली पीढ़ी के लोग भूल जाएंगे ।

वास्तविकता यही है कि जिस हिन्दी भाषा को आज पचास करोड़ लोग मातृभाषा के रूप में उपयोग करते हैं उनके व्यावहारिक जीवन के तमाम क्षेत्रों में उपयोग असंतोषजनक है । आजादी पाने के बाद वह सब न हो सका जो होना चाहिए था । लगभग सात दशकों से हिन्दी भाषा को इंतजार है कि उसे व्यावहारिक स्तर पर पूर्ण रुप से राजभाषा का दर्जा दे दिया जाय और देश में स्वदेशी भाषा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में संचार और संवाद का माध्यम बने । आज की स्थिति यह है कि शिक्षित होने का अर्थ अंग्रेजी जानना माने जाने लगा है । सिर्फ हिन्दी जानना अनपढतुल्य ही माना जाता है । हिन्दी के ज्ञान पर कोई गर्व नहीं होता है पर अंग्रेजी की दासता और सम्मोहन अटूट है । अंग्रेजी सुधारने का विज्ञापन ब्रिटेन ही नहीं भारत के तमाम संस्थाएं कर रही हैं और खूब चल भी रही हैं । हिन्दी क्षेत्र समेत अनेक प्रांतीय सरकारें अंग्रेजी स्कूल खोलने के लिए कटिबद्ध हैं । भाषाई साम्राज्यवाद का यह जबर्दस्त उदाहरण है । ज्ञान के क्षेत्र में जातिवाद है और अंग्रेजी उच्च जाति की श्रेणी में है और हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाएं अस्पृश्य बनी हुई हैं । उनके लिए या तो पूरी निषेधाज्ञा है या फिर ' बिना अनुमति के प्रवेश वर्जित है' की तख्ती टंगी हुई है । आज भूमंडलीकरण का युग है और सारी दुनिया समीप आ गयी है । यहाँ समीपता सीर्फ अंग्रेजी भाषा के कारण बनी है और जिसकी मांग है वही बचेगा । मांग अंग्रेजी की है इसलिए वह बनी हुई है और जो इसका मुकाबला नहीं कर सकते उसे हारा हुआ या मृत मान लिया जाए।

हिन्दी भाषा को लेकर गांधी जी ने कई विचार व्यक्त किये हैं वे 'हिंद स्वराज' में कहते हैं कि 'हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा हिंदी ही होनी चाहिए'। इसके पक्ष में वह कारण भी गिनाते हैं कि राष्ट्रभाषा वह भाषा हो जो सीखने में आसान हो, सबके लिए काम काज कर पाने संभावना हो,

सारे देश के लिए जिसे सीखना सरल हो, अधिकांश लोगों की भाषा हो । विचार कर वह हिंदी को सही पाते हैं और अंग्रेजी को इसके लिए उपयुक्त नहीं पाते हैं । उनके विचार में अंग्रेजी हमारी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती । वह अंग्रेजी मोह को स्वराज्य लिए घातक बताते हैं । उनके विचार में 'अंग्रेजी की शिक्षा गुलामी में ढलने जैसा है' । वे तो यहाँ तक कहते हैं कि ' हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं । राष्ट्र की हाय अंग्रेजों पर नहीं पड़ेगी हम पर पड़ेगी' । वे अंग्रेजी से मुक्ति को स्वराज्य की लड़ाई का एक हिस्सा मानते थे । वे मानते हैं कि सभी हिंदुस्तानियों को हिन्दी का ज्ञान होना चाहिए । उनकी हिन्दी व्यापक है और उसे नागरी या फारसी में लिखा जाता है, पर देवनागरी लिपि को वह सही ठहराते हैं ।

गांधी जी मानते हैं कि हिन्दी का फैलाव ज्यादा है । वह मीठी, नम्र और ओजस्वी भाषा है । वे अपना अनुभव साझा करते हुए कहते हैं कि 'मद्रास हो या मुम्बई भारत में मुझे हर जगह हिंदुस्तानी बोलने वाले मिल गए' । हर तबके के लोग यहाँ तक कि मजदूर , साधु, सन्यासी सभी हिन्दी का उपयोग करते हैं. अतः हिंदी ही शिक्षित समुदाय की सामान्य भाषा हो सकती है. उसे आसानी से सीखा जा सकता है । यंग इंडिया में वह लिखते हैं कि यह बात शायद ही कोई मानता हो कि दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले सभी तमिल-तेलुगु भाषी लोग हिंदी में खूब अच्छी तरह बातचीत कर सकते हैं । वे अंग्रेजी के प्रश्रय को 'गुलामी और घोर पतन का चिह्न' कहते हैं . काशी हिंदू विश्वविद्यालय में बोलते हुए गांधी जी ने कहा था : 'जरा सोच कर देखिए कि अंग्रेजी भाषा में अंग्रेज बच्चों के साथ होड़ करने में हमारे बच्चों को कितना वजन पड़ता है । १९४६ में 'हरिजन' में गांधी जी लिखते हैं कि 'यह हमारी मानसिक दासता है कि हम समझते हैं कि अंग्रेजी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता । मैं इस पराजय की भावना वाले विचार को कभी स्वीकार नहीं कर सकता' । आज वैश्विक ज्ञान के बाजार में हम हाशिए पर हैं और शिक्षा में सृजनात्मकता का बेहद अभाव बना हुआ है । अपनी भाषा और संस्कृति को खोते हुए हम वैचारिक गुलामी की ओर ही बढ़ते हैं ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन इंदौर के मार्च **1918** के अधिवेशन में बोलते हुए गांधी जी ने दो टूक शब्दों में आहवान किया था : 'पहली माता (अंग्रेजी) से हमें जो दूध मिल रहा है, उसमें जहर और पानी मिला हुआ है, और दूसरी माता (मातृभाषा) से शुद्ध दूध मिल सकता है । बिना इस शुद्ध दूध के मिले हमारी उन्नति होना असंभव है । पर जो अंधा है, वह देख नहीं सकता । गुलाम यह नहीं जानता कि अपनी बेड़ियां किस तरह तोड़े । पचास वर्षों से हम अंग्रेजी के मोह में फंसे हैं । हमारी प्रज्ञा अज्ञान में डूबी रहती है । आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनने का गौरव प्रदान करें । हिन्दी सब समझते हैं, इसे राष्ट्रभाषा बना कर हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए' ।

स्वतंत्रता मिलने के बाद भी हिन्दी के साथ खिलवाड़ करते हुए हम अंग्रेजी को ही तरजीह देते रहे हैं । ऐसा शिक्षित वर्ग तैयार करते हैं जिसका शेष देश वासियों से सम्पर्क ही घटता जा रहा है और उसकी संस्कृति का स्वाद देश से परे वैश्विक होने लगा है । हम मैकाले के तिरस्कार से भी कुछ कदम आगे ही बढ गए । देशी भाषा और संस्कृति का अनादर जारी है । गांधी जी के शब्दों में 'भाषा माता के समान है । माता पर हमारा जो प्रेम होना चाहिए वह हममें नहीं है' । मातृभाषा से मातृवत स्नेह से साहित्य, शिक्षा, संस्कृति, कला और नागरिक जीवन सभी कुछ गहनता और गहराई से जुड़ा होता है ।

कवि बच्चन ने कहा था कि - 'जो बीत गई सो बीत गई' । जो हो गया उस पर पछताने से अब क्या लाभ । आगे की सोचना है उसके लिए अभी से तैयार होना जरूरी है, समय ज्यादा नहीं बीता है अब भी अपनी भूल को सुधारा जा सकता है । जब आँख खुली तभी सबेरा होता है यही मानकर हमें आगे बढना है । एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि हिन्दी भाषा को हेय की दृष्टि से देखने के कुंठित विचारों का त्याग करना आवश्यक हो गया है । हमें अपनी भाषाओं से प्रेम करने की आवश्यकता है जहाँ भी जाएं अपनी भाषा में ही बातचीत करने का प्रयास करें । सबसे कष्ट तब बोता है जब हिन्दीभाषी ही हिन्दी का मजाक उड़ाते हैं । वे हिन्दीत्तर क्षेत्र के लोगो की हिन्दी पर हंसते हैं जिसके कारण हिन्दीत्तर भाषी हिन्दी जानकर भी हिन्दी बोलने में संकोच करते हैं । ऐसी मानसीकता को हमें रोकना होगा जो हिन्दी के प्रचार-प्रसार में बाधक हैं । आज मीडिया में जिस तरह से हिन्दी भाषा का धल्लड़े से प्रयोग होने लगा है इससे हिन्दी में बोलने वालों की हिचकता को विराम लगा है । देश के प्रधानमंत्री ने हिन्दी को आज विश्वपटल तक पहुँचाने का जो प्रयास किया है उससे हिन्दी की गरीमा बढ़ी है । कपिल शर्मा का कॉमेडी शो हो या कौन बनेगा करोड़पति जैसे टी. वी. कार्यक्रमों से हिन्दी की लोकप्रियता काफी बढी है । हिन्दी भाषा का बोलचाल के रूप में प्रयोग तो बढा है लेकिन लेखन के क्षेत्र में कमी देखने को मिलती है । इसके लेखन को भी लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता है । आधुनिक मोबाइल, टेबलेट, लैपटाप और कंप्यूटरों में हिन्दी टूलकिट उपकरण तो लगे हैं बस उन्हे उपयोग करने की आवश्यकता है । माइक स्पीच के माध्यम से भी हिन्दी लेखन को बढ़ावा दिया जा सकता है । उसमें अपने विचारों को लिखित रुप देकर कहीं भेजा जा सकता है । बस हमें करने की आवश्यकता है तभी जाकर हम हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा और दूसरे को भी प्रोत्साहित करने में सफल हो सकते हैं ।

संत रविदास का जीवन-दर्शन

✍ डॉ. अनुराग शर्मा

संत काव्य परम्परा में संत रविदास का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इनकी रचनाओं में इनका भक्त, विचारक एवं सुधारक रूप एक साथ देखा जा सकता है । संत शिरोमणि कबीरदास एवं गुरू नानक देव की भाँति इन्होंने तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों के प्रति जन सामान्य को सचेत कर सही सच्चे जीवनोपयोगी 'कृत' की ओर प्रेरित किया । संत रविदास का जीवन- दर्शन अत्यंत व्यापक,उदार-सर्वहितकारी विशेषकर पीड़ित, शोषित तुच्छ जाति के लोगों में आत्म विश्वास संचरित करने वाला है ।

संत कवियों का अपना दर्शन, अपनी विचार धारा होती है- इसीलिए इन्हें सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा संत अथवा महात्मा कहा जाता है । वस्तुतः ये सम्बोधन उनके दर्शन की पुष्टि कराता है । जहाँ तक संत रविदास के जीवन-दर्शन का सम्बन्ध है - वह सम्पूर्णतः भारतीय है पर युगीन समस्याओं, सामाजिक धरातल पर वह मौलिक भी कहा जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति भले ही वह सामान्य कोटि का हो या संत प्रकृति का हो कुछ न कुछ अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित जरूर होता है । संत रविदास का दर्शन अत्यन्त स्पष्ट जीवन समाज की ज्वलंत समस्याओं पर आधारित है । वस्तुतः वह किसी एक व्यक्ति विशेष का दर्शन नहीं जन सामान्य का दर्शन बन गया है ।

संत रविदास का जीवन- दर्शन व्यक्ति, वर्ग, जाति, सम्प्रदाय, देश, समस्त विश्व के प्राणियों के लिए हितकारी है । उससे किसी प्रकार की संकुचित दृष्टि अथवा मत प्रतिवाद अथवा समर्थन नहीं । यही कारण है कि रविदास एक विलक्षण प्रतिभा के संत, जीवन-द्रष्टा एवं महात्मा की साक्षात् प्रतिमा स्वरूप हैं । आज के आपाधापी के युग में तो समाज में स्थिरता, सद्भाव, प्रेम, समानता, कर्त्तव्यनिष्ठा हेतु इनके प्रतिपादित जीवन-दर्शन का विशेष महत्त्व है ।

संत रविदास की दृष्टि में धार्मिक पाखण्ड, मिथ्याचार, पाषाण पूजा आदि कर्मकाण्ड मुक्ति के उपाय नहीं हैं । कर्म के प्रति सचेत रहने और राम नाम का जाप करने से प्रेम भाव से जीवन यापन करके ही मुक्ति हो सकती है । मन की पूजा सबसे बड़ी पूजा है-

> मन ही पूजा मन ही धूप मन ही सहज सरूप,
> पूजा अर्चना न जानू तेरी कहि रविदास पवन गति मेरा ।।[1]

संत रविदास जी अद्वैतवादी हैं । इसलिए वे ब्रह्म विश्वातीय हैं ब्रह्म त्रिकाल- अबाधित होने से देशकाल एवं निमित्त से परे है । इसलिए उनकी सत्ता निरपेक्ष है । वह सत्य का भी सत्य है । वही परमार्थिक सत्ता है ।वह अद्वितीय, निर्गुण-निरूपाधी और निविशेष है । वह जाति गुण-क्रिया तथा अन्य विकल्पनों आदि से रहित एवं कटुस्थ परमार्थ है । इसलिए रविदास के अनुसार

ब्रह्म और जीव में अद्वैत भाव है । उनमें कोई अन्तर नहीं है । इसीलिए तो उन्होंने कहा है कि मेरे जीव और ब्रह्म में क्या अन्तर? तू और मैं वास्तव में एक हैं ठीक उसी प्रकार जैसे सोना और गहना तथा जल और तरंग -

> तोहीं मोही अंतरू कैसा
> कनक कटिक जल तरंग जैसा ।।[2]

संत रविदास ने अपने गुरू स्वामी रामानन्द जी की श्रद्धा-भक्ति का पूर्णतः पालन किया था । ठाकुर-पूजा, भगवद् कथा, सुनना-सुनाना कीर्तन करना इनकी नित्य दिनचर्या थी । अतः रविदास निर्गुण होते हुए भी सगुण के विरोधी नहीं थे । वे एक पद में अपने प्रभु से कह रहे हैं कि मैं आप के बिना नहीं रह सकता तुम चाहे मुझसे नाता तोड़ लो लेकिन मैं तुमसे रिश्ता नहीं तोड़ूँगा और अगर मैं तुमसे ही बंधन तोड़ लूँगा तो किसके साथ नाता जोड़ूँगा -

> जो तुम तोरों राम मैं नहीं तोरों,
> तुम सौ तोरि कवन सूँ जोरौं ।
> तीरथ ब्रत न करौं अंदेसा
> तुम्हारे चरन कवल का भरोसा ।।[3]

संत रविदास ने पैतृक व्यवसाय अपनाकर श्रम को महत्ता प्रदान की । इससे एक ओर तो श्रम का महत्त्व बढ़ा दूसरी ओर अन्य साधु संतो की आकर्मण्यता एवं भिक्षावृत्ति के विरूद्ध भी संकेत मिला, श्रम साधना को ही रविदास ने ईश्वर भक्ति माना है वे कहते हैं कि स्वयं कार्य करके खाने वाला असफल नहीं होता है -

> रविदास श्रम करि खाइहि, जौ लो पार बसाय ।
> नेक कमाई जउ करइ, कव्हु न निहफल जाय ।।[4]
> श्रम कउ ईसर जानि कै, जऊ पूजहि दिन रैन ।
> रैदास तिन्हहिं संसार मह, सदा मिलीह सुख चौन ।।[5]

इस प्रकार भक्तिकालीन संत कवियों में संत रविदास ही ऐसे दिखाई देते है । जिन्होनें पैतृक व्यवसाय जीवन पर्यन्त करते हुए श्रमपूर्वक जीवन जिया ।

संत रविदास की वाणी में भावानुभूति का प्रखर और अजस्र प्रवाह मिलता है । उनके काव्य का संसार भावात्मक है । उनका प्रत्येक क्षण अपने प्रभु के ध्यान में व्यतीत होता है । इसलिए उनकी वाणी में विरह प्रेमानुभूति, रहस्यानुभूति और भक्ति रस का सुन्दर परिचायक मिलता है । रविदास की भक्ति के आवेग में अभिव्यक्ति के लिए फूट पड़ी । भक्ति की भावना जब बढ़ती हुई एक सीमा को पार कर जाती है । तब साधक प्रेम-साधना में लीन होकर सभी ओर आराध य की प्रेममयी सत्ता का दर्शन करता है । रविदास ने भी ऐसी ही अनुभूति की है -

सब में हरि है, हरि में सब है हरि अपना जिन जान ।।[6]

संतो के साहित्य में दास्य भाव का स्थान महत्त्वपूर्ण स्थान हैं । क्योंकि सभी संतो ने अपनी भक्ति का दास्य भाव में व्यक्त किया हैं । गुरू रविदास जी प्रेम विह्वल होकर भगवान से कह उठते हैं कि हे भगवान! तुम चन्दन हो और हम पानी हैं, आप दीपक हैं, हम बाती हैं आप स्वामी हो हम दास हैं । इस प्रकार प्रस्तुत वाणी से दास्य भाव प्रकट होता है -

प्रभु जी तुम चन्दन हम पानी,जाकी अंग अंग बास समानी ।
प्रभु जी तुम घन हम मोरा, जैसे चितवन चंद चकोरा ।।
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति जरै दिन राति ।
प्रभु जी तुम मोती हम धागा, जैसे सोनहिं मिलन सोहागा ।।
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भगति करै रविदास ।।[6]

संत रविदास के काव्य में तत्कालीन सामाजिक विषम व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना व्यक्त हुई है । उन्होंने अपनी वाणी द्वारा सामाजिक विषमता, दुःखों को दूर कर मानव को सचेत करते हुए कहा है कि पराधीनता पाप है । उन्हें भारत की पराधीनता खली जा रही थी उन्होंने इस पराधीनता को पाप बताते हुए कहा कि पराधीन व्यक्ति को सभी हीन समझते हैं तथा ऐसे व्यक्ति से कोई भी प्रीत नहीं करता । अर्थात् पराधीन व्यक्ति का कोई भी धर्म नहीं होता । इसलिए हम सब भारतीयों को जाति, धर्म आदि मतभेद को छोड़कर इस परतंत्रता से मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए । जैसे -

पराधीनता पाप है जान लेहु रे मीत ।
'रविदास' दास पराधीन सों, कौन करै है प्रीत ।।
पराधीन कौ दीन क्या, पराधीन बेदीन ।
'रविदास' दास पराधीनता कौ, सबही समझै हीन ।।[8]

संत रविदास के दर्शन मनुष्य को सदाचार की प्रेरणा देते हैं । तत्कालीन, मध्यकालीन समाज, धार्मिक अंधविश्वासों, ब्राह्र्य आडम्बरों, कर्मकाण्ड और पाखण्डों में उलझा हुआ था। मुसलमान शासकों की क्रूरता और धर्मान्धता से हिन्दुओं और मुसलमानों में विद्वेष व संघर्ष बढ़ रहा था । अतः सन्तों ने धार्मिक रूढ़ियों, कर्मकाण्डों और पुरोहित वर्ग की निरंकुशता का विरोध कर समाज में एकता, करूणा, प्रेम भावना, वैराग्य भावनाओं की स्थापना की है, जो आज भी प्रासंगिक है ।

एकात्म भाव की मूल चेतना संत रविदास के दर्शनों में भी दिखाई देती है । वही एक कर्ता- धरता है जो समस्त दृश्यमान जगत् के लिए केन्द्रीय तत्त्व के रूप में निहित बताया गया है । वही तत्त्व, एक नूर,एक प्राण, एक आत्मा बनकर संत रविदास की वाणी में समतामूलक विचार स्थापित करता है । एक ही परमात्मा की संताने होने का भाव जगाया है । हिन्दू-मुस्लिम एकता

का आधार पूजा-पद्धतियाँ न होकर एक प्राणतत्त्व, एक नूर का होना बताना अधिक सार्थक है ।जैसै-

रविदास प्रेखिया सोध करि, आदम सम समान ।
हिन्दू मुसलमान कउ, स्रष्टा इक भगवान ।।[9]

अर्थात सम्पूर्ण मानव जाति एक ही प्राणतत्त्व से जीवित है । अतः एक तत्त्व की प्रधानता के कारण सभी समान हैं । कोई बड़ा-छोटा अथवा नीचा-ऊँचा नहीं है । हिन्दू हो अथवा मुसलमान सभी का कर्ता- स्रष्टा तो एक ही परमात्मा है ।

संत रविदास ने समस्त मानव जाति को अपने हृदय में दया-भाव एवं करूणा भाव को स्थान देने का उपदेश दिया है । यह तभी संभव है जब व्यक्ति अपनी समस्त इन्द्रियों को वश में कर ले 'इन्द्रिय निग्रह' ही आनन्द का आधार है । जैसे-

जउ बस राखे इन्द्रियां सुख दुःख समझि समान ।
सोउ अमरित पायगो, कही 'रैदास' बखान ।।[10]

संत रविदास जी के काव्य में दया-करूणा का भाव दिखायी देता है-

दया भाव हिरदै नहीं, भखहिं पराया मास ।
ते नर नरक मंह जाइहिं सत्त भाषै 'रविदास' ।।
प्रानी बध नहि कीजियहिं जीव ब्रह्म समान ।
'रविदास' पाप नंह छूटइ करोर गउन करि दान ।।[11]

संत रविदास के काव्य में विरक्ति या वैराग्य की भावना दिखाई देती है । यह वैराग्य की भावना निर्गुण काव्यधारा में समाज विषयक भावनाओं में महत्त्वपूर्ण बिन्दु माना जा सकता है क्योंकि निर्गुण संतो ने मानव को जो वैराग्य का भाव दिखाया है वह सांसारिकता से विरक्ति का नया दर्शन है । अतः इसमें वैरागी को घर छोड़कर जाने की आवश्यकता नहीं है । संसार में निवास भी ऐसे होना चाहिए जिस प्रकार मुख में जिह्वा का निवास है ।

संत रविदास के भक्ति का आधार प्रेम है, भक्ति में जहाँ वैराग्य,सेवा, श्रद्धा, विश्वास तथा उपासना को सम्मिलित किया जाता है, वहीं पूजा में प्रेम का भी अपना एक विशिष्ट स्थान है। गुरू रविदास जी की भक्ति का स्वरूप 'प्रेम भक्ति' ही है । उन्होंने अपनी प्रेम-भावना को व्यक्त करते हुए कहा है बिना प्रेम के भक्ति संभव नहीं है । गुरू रविदास ने अपनी भक्ति में 'प्रेम' के आधिक्य को अन्य कई प्रकार से प्रदर्शित किया है । जब भी उनके मन में यह प्रेम का भाव नहीं उपजता वे उदास हो जाते हैं । जैसे-

प्रेम भगति नहीं ऊपजै, ता ते 'रविदास' उदास ।।[12]

संत रविदास का जीवन-दर्शन और काव्य उदात्त मानवता के लिए आवश्यक सदाचारों

के शाश्वत सैद्धान्तिक मूल्यों का अक्षय भण्डार है । जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए मानसिक स्तर पर सुन्दर-सुन्दर मोतियों का चुनाव सुमगमता से कर सकता है । रविदास ने छुआछूत तथा वर्ण व्यवस्था का विरोध कर सामाजिक स्वास्थ्य के लिए अचूक औषधि तैयार की । 'जीव हत्या' को पाप घोषित कर मांसाहार जैसी प्रवृत्ति को समाप्त करने का प्रयास किया तथा अहिंसा के वैदिक सिद्धांत का प्रचार-प्रसार भी किया । वहीं पर मानव को पूजा के साथ- साथ श्रम के प्रति महत्त्वपूर्ण उपदेश भी दिया ।

संदर्भः

1. गौतम, डॉ. मीराः संत रविदास की निर्गुण भक्ति, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण- **1998**, पृ.**128**
2. आजाद, आचार्य पृथ्वी सिंहः रविदास दर्शन, गुरू रविदास संस्थान, चण्डीढ़, प्रथम संस्करण- **1973**, पृ.**80**
3. गुप्त, योगेशः संत रैदास, हिन्दी पाकेट बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण- **1989**, पृ.-**25**
4. आजाद, आचार्य पृथ्वी सिंहः रविदास दर्शन, गुरू रविदास संस्थान, चण्डीगढ़,प्रथम संस्करण- **1973**, पृ.**115**
5. वही, पृ. **116**
6. शर्मा, वेनी प्रसादः संत गुरू रविदासः संत गुरू रविदास वाणी, सूर्य भारतीय प्रकाशक, नई सड़क, दिल्ली, पृ. **73**
7. साहिब, निशानः श्री रविदास दर्शन एवं मीरा पदावली, श्री रविदास जन्म स्थान, पब्लिक चैरीटेबल, जालन्धर, संस्करण- **2000**, पृ. **44**
8. वही, पृ. **115**
9. वही, पृ. **108**
10. सिंह, डॉ. एन. (संपादक) : रैदास ग्रन्थावली, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, संस्करण-**2003**, पृ. **92**
11. साहिब, निशानः श्री गुरू रविदास दर्शन एवं मीरा पदावली, श्री गुरू रविदास जन्म स्थान, पब्लिक चैरीटेबल, जालन्धर, संस्करण-**2000**, पृ. **114**
12. वही, पृ. **30**

लोक साहित्यः अध्ययन की दिशायें एवं महत्व
(भोजपुरी लोक साहित्य के संदर्भ में)

कुलदीप सिंह

साहित्य समाज का दर्पण होता है, समाज में जो कुछ भी घटित होता है उसकी सीधी अभिव्यक्ति साहित्य में होती है । साहित्य के दोनों रूपों में शिष्ट साहित्य का रूप जहां लिखित होता है वही लोक साहित्य का रूप लिखित तथा मौखिक दोनों होता है । शिष्ट साहित्य जहां तरह-तरह के नियमों का पुलिंदा है तो लोक साहित्य मनुष्य की सहज और स्वाभाविक उद्धार। लोक साहित्य में मानव के भूत भविष्य और वर्तमान तीनों का वर्णन होता है । लोक साहित्य के द्वारा आदिम सभ्यता तथा अर्ध-सभ्य समाजों के भावनाओं की अभिव्यक्ति मिलती है । जन संस्कृति का जैसा सच्चा तथा सजीव चित्रण इसमें उपलब्ध होता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । सरलता, सहजता, तथा स्वाभाविकता में यह अपना सानी नहीं रखता है । लोककथा,संसार के समस्त कथा साहित्य का जनक है और लोकगीत सकल काव्य की जननी । लोक अपने पूरे दम-खम के साथ प्रस्तुत रहता है ।

लोक साहित्य का अर्थ

लोक साहित्य दो शब्दों से मिलकर बना है 'लोक' तथा 'साहित्य' । 'लोक' शब्द संस्कृ त के 'लोक दर्शने' धातु से 'धङ' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है । इस धातु का अर्थ है देखना जिसका लट लकार में अन्य पुरूष एक वचन का रूप लोकते है । इस प्रकार लोक शब्द का अर्थ हुआ 'देखने वाला'। इस प्रकार वह समस्त जन समुदाय जो इस कार्य को करतें है 'लोक' कहलायगा । लोक साहित्य कहने से हमारा तात्पर्य उस साहित्य से है जिसमें 'लोकगीत', 'लोककथा', 'लोकगाथा' लोकनृत्य', लोकविश्वास', 'लोककला' ,'लोकसंगीत' के साथ - साथ मुहावरे,कहावतें 'पहेलियां' सूक्तियां इत्यादि आती हैं । इन्ही सभी को आधार बनाकर किसी समाज में व्यापत वहां के रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन आदि का लोकसाहित्य के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है । हालांकि लोक साहित्य की कोई निश्चित परिभाषा देना संभव नहीं हैं फिर भी यह कहा जा सकता है कि यह मौखिक और परंपरागत होता है । इसमें आए गीत और कथा किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं गढ़ा जाता है इसलिए इसका रचयिता अज्ञात होता है । यह लोक द्वारा ही अपना स्वरूप ग्रहण करता है । डॉ कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार "वह साहित्य उतना ही स्वभाविक था जितना जंगल में लिखने वाला फूल, उतना स्वछंद था जितना आकाश में विचरने वाली चिड़ियां, उतना ही सरल तथा पवित्र था जितना गंगा जल की निर्मल धारा । उस समय के साहित्य का जो अंश आज अवशिष्ट तथा सुरिक्षत रह गया है वहीं हमें लोक साहित्य के रूप में उपलब्ध होता है ।"[1] लोक साहित्य की कोई निश्चित विधा नहीं होती है यह तो पीढ़ी-दर पीढ़ी

आचार-विचार,कथाओं-गाथाओं, गीतों-कविताओं, के माध्यम से हस्तांतरित होते रहती है । लोक साहित्य को स्पष्ट करते हुए गणेश दत्त सारस्वत लिखते हैं “यह जनता का वह साहित्य है जो जनता के द्वारा लिखा गया है ।”[2]

लोक साहित्य के अध्ययन के कई महत्वपूर्ण बिन्दु हैं जिनका अवलोकन करने के पश्चात ही हम इसके महत्व को समझ सकते हैं-

1 लोक गीतों की दृष्टि से लोक साहित्य के अध्ययन का महत्व लोक :- साहित्य के अध्ययन में लोक गीतों का विशिष्ट स्थान है । लोक साहित्य के वर्गीकरण में इसका नाम सर्वप्रथम है । इनके गीतों को प्रायः साल भर गाए जाने की परंपरा है । ये गीत मनुष्य की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है । जब कभी भी मनुष्य जनसमाज में, चेतन- अचेतन रूप में, जो भावनाएं जाने की परंपरा है-

1. संस्कार गीतः-डॉ. शांति कुमा जैन ने अपनी पुस्तक “लोक गीतों के सन्दर्भ और आयाम” में **180** संस्कार गीतों का नामोल्लेख किया है किन्तु मुख्य रूप से **16** संस्कार गीतों का ही प्रचन है । इन्हें ‘षोडस संस्कार’ भी कहा जाता है । इन षोडश संस्कारों में पुत्र, जन्म, गौना, विदाई तथा विवाह गीत आदि प्रमुख है । सोहर का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

गावहु ए सखि ! गावहु, गाई के सुनावहु हो ।
सब सखि जुली गावहु, आजू मंगल गीत हो ।[3]

1. ऋतुओं के गीतः- ऋतु सम्बन्धी गीतों में जनमानस पूरी तरह रंगी दिखाई पड़ती है । विभिन्न ऋतुओं में जनमानस के अनुरंजन के लिए गीतों को गाने की प्रथा बहुत दिनों से चली आ रही है ।भारत में कजरी, होली, चौता तथा बारहमासा आदि प्रमुख ऋतु परक गीत है ।

2. व्रत एवं त्योहारों के गीतः- हमारा जीवन धर्ममय है, जहां वर्षों भर किसी न किसी अवसर पर गीत गाए जाने की परंपरा है । विभिन्न मासों में बहुरा, तीज, पिंड़िया और गोधन, रक्षाबंधन, गरबा, करवाचौथ इत्यादि ऐसे अवसर है जिसमें लोक गीत गाए जाने की प्रावधान है । रक्षाबंधन का एक गीत जो भोजपुरी प्रदेश में इस प्रकार गाया है ।

रखिया बन्हाल भईया सावन आइल
जी य तु लाख बरीस हो
तोहरा के लागे भईया हमरी उमीरिया
बहिना ना देहि असीस हो[4]

3. जाति के गीतः- गीतों में कुछ ऐसे गीत भी है जो केवल विशिष्ट जाति के लोगों द्वारा ही गाया जाता है जैस ग्वालवालों के गीत

4. श्रम गीतः- श्रम वे गीत होतें है जिसे किसी काम को करते वक्त गाया जाता है । इन गीतों को गाकर लोग

अपनी थकान को मिटाते है, साथ ही इन्हे गाने से परिश्रम का पता भी नहीं चलता है । रोपनी, सोहनी, जतसार आदि प्रमुख श्रम परक गीत है ।

5. बालगीतः- बालगीतों का सम्बन्ध विशेष रूप से खेलों से जुड़ा होता है । लड़के-लड़कियों के जीवन में खेल का बहुत महत्व है । इन सबसे सम्बंधित गीत हैं । लोरी गीत, गबड्डी इत्यादि । लोरी गीत का एक उदाहरण निम्नलिखित है -

चंदा मामा आरे आवा बारे आवा
नदिया किनारे आवा
सोना के कटोरिया में
दूध भात लेले आवा
बबुआ के मुहवा में गुटुक ।।[5]

6. धार्मिक भावना के गीतः- इस गीत के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के धार्मिक गीत आते हैं जैसे गणपति के गीत, नाग देवता के गीत इत्यादि । इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक गीत के गाने का एक निश्चित समय और महत्व होता है । लोक गीत की ही तरह लोक कथा, लोग नाट्य, लोक संगीत, लोक वाद्य, लोक परंपरा, लोक विश्वास, लोक मुहावरे, लोक कहावतें इत्यादि कई दृष्टियों से इसके महत्त्व को समझा जा सकता है ।

7. धर्म की दृष्टि से लोक साहित्य के अध्ययन का महत्त्वः- लोक साहित्य के अध्ययन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है । लोक साहित्य की आधारशिला धर्म पर टिकी हुई है । धर्म लोक जीवन का प्राण है, बल है, आधार है । चूंकि भारतीयों का जीवन धर्ममय है इसलिए भारतीय लोक साहित्य की पृष्ठभूमि धर्म ही है । यही कारण है कि हमारे विविध क्रिया-कलापों में धर्म का यह रूप किसी न किसी रूप में दिख ही जाता है । लोक गीत, लोक गाथा, लोक कथा, लोक नाट्य लोक संगीत सुक्तियों आदि में धर्म का यह रूप प्रस्फुटित होता है । भारतीय जनमानस धर्म पर इतना ज्यादा विश्वास करता है कि वह अपने किए गए कर्मों के परिणामों को भगवान की देन मानने लगता है । डा. कृष्ण देव उपाध्याय का इस संदर्भ में कथन है "लोक साहित्यि के सभी अंगों में धर्म उसी प्रकार वर्तमान है जिस प्रकार माला के प्रत्येक मनिका में सूत्र । धर्म की अनुस्युतता के कारण ही जनता का साहित्य इतना लोक प्रिय हो सका है । यही कारण है इसके इतना स्थायित्व प्राप्त हो सका है ।"[6] विविध लोक गीतों तथा कथाओं में इसी प्रकार के सदाचार, सत्यनिष्ठ तथा सतित्व का चित्रण हुआ है । भारतीय जनमानस में धर्म इस कदर सर चढ़ कर बोलता है की वें चेचक आदि जैसे रोगों को 'माई जी' 'माता जी' आदि कहकर संबोधित करते हैं । धर्म का यह रूप विविध रूपों में देखने में मिलता है- देवी-देवताओं के पूजन में, सूर्य, तुलसी, पीपल, गंगा, प्राकृतिक वस्तुओं तथा पेड़ पत्थर के पूजन इत्यादि में । यह धर्म का ही प्रभाव है जब वे कहते कि

सोम सनीच्चर पूरब न चालू

मंगल बुध उत्तर दिसी कालू[7]

8. रस दी दृष्टि से लोक साहित्य के अध्ययन का महत्त्व रस किसी भी साहित्य का प्रमुख आधार है, चाहे वह लोक साहित्य हो या चाहे शिष्ट साहित्य,प्रायः सभी लोक गीतों में रस का पुट अवश्य रहता है । लोक गीत रस का ऐसा प्याला है जिसे पीने के बाद लोगों की प्यास बुझती नहीं बल्कि और अधिक बढ़ जाती है । मनुष्य द्वारा उच्चारित प्रत्येक गीतों में रस की चहलकदमी अवश्य रहती है । वैसे तो लोक साहित्य के गीतों में श्रृंगार करूण तथा वात्सल्य रस की ही प्रधानता रहती है किन्तु गौण रूप से प्रायः सभी रसों का सामंजस्य दिखलाई पड़ता है । इस प्रकार रस की दृष्टि से लोक साहित्य का अध्ययन एक महत्वपूर्ण बिंदु है ।प्रत्येक लोक गीत से रस टपकती है । विविध रसों के गीत प्रस्तुत हैः-

करूँण रस : विदाई, वियोग या वैधब्य इन तीनों अवसरों पर स्त्रियां प्रायः दुःख के गीत गाती है । विदाई के समय गाए जाने वाले गीत का एक उदाहरण हैः-

"बाबा के रोवले गंगा बढ़ी अइली, आमा के रोवले अनोर ।
भईया के रोवले चरण धोती भीगे, भउजी नयनवा न लोर ।"[8]

श्रृंगार रस : श्रृगांर रस का उदाहरण दृष्टव्य हैः-
पनिया भरण चली बांकी रसीली
घड़े को उतर गोरी कुंवे पर रख दो
हमसे करो दो एक बात रसीली ।। (पनिया)[9]

इस प्रकार अन्य रसों के उदाहरण भी मिलते है जैसे- 'आल्हा-खंड' में वीर रस, भजन तथा संतों के पदों में शांत रस, कोहबर में हास्य रस इत्यादि ।

नारी चित्रण की दृष्टि से लोक साहित्य के अध्ययन के महत्व लोक साहित्य के अध्ययन में नारी चित्रण एक महत्वपूर्ण विषय है । वैसे तो हमारा समाज पुरूष प्रधान समाज है किन्तु लोक साहित्य के क्षेत्र में एक बात गौर करने लायक है वह यह कि लोक साहित्य चाहे उसके वर्णन में। संस्कार गीत प्रायः औरतों द्वारा गाया जाता है । तीज, कजरी, सोहर, चौता, करवाचौथ, रोपनी, सोहनी, निरौनी, जंतसार, लोरी, मृत्यु गीत आदि अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जिसमें केवल नारियां ही गीतों को गाती हैं । इसके अलावा देवी के गीत, लंगुरिया नवराज्ञी के गीत, दीपावली, सावन के गीत, झूला के गीत, बालको के गीत आदि में नारी प्रधानता रहती है ।इन अवसरों पर गाने के अलावा जब कभी बच्चों को सुलना होता है तब नारी अपने बच्चे को लोरियां, कथा सुनाकर सुलाती है । इस प्रकार हम कह सकते है कि लोक साहित्य के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण विषय है ।

लोकसंस्कृति की दृष्टि से लोक साहित्य के अध्ययन का महत्त्व यदि किसी समाज की संस्कृति का सहज तथा स्वाभाविक चित्रण देखना है तो हमें वहां के लोक साहित्य का अध्ययन करना होगा । ग्रामीण कवियों ने समाज में जिस समता तथा विषमता का अनुभव किया है, उसका

उसी रूप में चित्रण किया है, उसका उसी रूप में चित्रण किया है । पारिवारिक जीवन के जो मर्म स्पर्शी दृश्य यहाँ उपलब्ध होते है उसका दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है । सुन्द्र तथा दिब्य दृश्यों के चित्रण में उनके कलम जितनी तेजी से चलते है बुरे तथा भद्दे पक्ष के चित्रण में भी उनके कलम की रफ्तार वही रहती है । लोक साहित्य में जहां मात-पुत्री का आदर्श प्रेम है तो साथ में सास-बहु, नन्द-भौजाई के कटु तथा विषक्त-ब्यवहार का वर्णन भी है । इसीलिए वह समाज के सच्चे दृश्यों को स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करने में सफल हुआ है ।

सामाजिक जीवन का चित्रणः- लोक साहित्य में समाज का चित्रण वर्णन पारदर्शी कांच की तरह होता है, अर्थात इसमें एक ओर तो पिता-पुत्र, माता-पुत्री, भाई-बहन का आदर्श प्रेम है तो दूसरी तरफ सास-बहु तथा भाई-भाई का तू-तू मैं-मैं भी है । आदर्श सतीत्व का उदाहरण दृष्टव्य है जिसमें एक हरिनी के सतीत्व प्रेम को दिखाया गया है-

छापक पेड़ छिउलिया त पतवत गहबर
अरे रामा तेही तर ठाढ़ी हरनियाँ त मन अति अनमनी
\- - - - - - - -

जब जब बजे केचरियां सबद सुनि अनकई
हरिनी ठाढ़ी ढकुलिया के निचे हिरन के बिसूरई । [10]

सामाजिक चित्रणः- में जहाँ एक तरफ आदर्श प्रेम है वहीं सास-बहू, नन्द- भौजाई का कटु एवं विषाक्त प्रेम भी है । लोक गीतों में सास दरूनियाँ (दारूण) विशेषण से संबोधित की गयी है । सास हमेशा अपने बहु को (जिसका पति विदेश चला गया है) कहती है कि 'तू केकर कमईया कइभु ए रामा'[11] । सास केवल कटु वचन ही नहीं बोलती बल्कि शारीरिक कष्ट भी देती है जैसे बर्तन मजवाना,पानी काढ्वाना, खाना पकवाना, बोझा उठवाना, गोड़ाई करवाना इत्यादि ।

आर्थिक पक्ष का चित्रणः- आर्थिक चित्रण द्वारा समाज की असली पहचान होती है । ग्रामीण समाज में जहाँ सुख और समृद्धि के सागर का हिलोर है तो वही घोर निर्धनता, हीनता, दीनता का वीभत्स कंकाल भी सामने दिखलाई पड़ता है । गरीब किस प्रकार समाज में टूटी खाट, चुती छत, फटी गदरी, पुराने पोशाक आदि के सहारे जीवन व्यतीत कर रहा है इसका चित्रण भी देखने को मिलता है । कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि सुख-दुःख आशा-निराशा, विलास, वैभव और दैन्य-दीनता के उभय पक्षों का वर्णन लोक साहित्य में पाया जाता है । निर्धनता की एक झलक निम्न पंक्तियों में दृष्टब्य होता है जिसमे स्त्री का पति विदेश चला गया है तथा वर्षा आने पर उसके चुतेघर को छाने वाला कोई नहीं है, छत से पानी टप टप टपकता रहता है ---

टूटही मडईया बुनिया टपकाई रे, के सुधि लेवे हमार ?
जेठ छवावत आपन बंगलवा, देवरा छवावे चौपार
हमारा मंदिलवा केऊ न छवावे, जेकर पियवा विदेश ।[12]

लोक साहित्य के अध्ययन में उत्सवों एवं त्योहारों का महत्वपूर्ण स्थान है । भारत उत्सवों एवं त्योहारों का देश है, जहाँ वर्षो भर उत्सव तथा त्यौहार मनाये जाने की परंपरा है । इन त्योहारों में मेलें एवं उत्सव हमें प्रसन्नचित, स्वस्थ तथा आनंदित रखते हैं । इनसे हमारे जीवन में उमंग, उल्लास एवं नयी चेतना का संचार होता है । ये हमारे मनोरंजन के साथ-साथ हमे भावात्मक एकता भी प्रदान करते हैं । इनके द्वारा हमारी प्राचीन संस्कृति, परम्पराओं, लोक जीवन, वेश-भूषा, खान-पान, नृत्य-संगीत तथा हमारे विगत इतिहास की झलक भी मिलती है ।

मेलों एवं उत्सवों के रूप में देश की आत्मा बोलती है साथ ही साथ इसमे सामान्य जनता की हार्दिक भावनाए दिखती है । इसी कारण भारत सरकार तथा राज्य सरकार के पर्यटन विभाग हर वर्ष देश के कोने-कोने में मेलों एवं उत्सवों को बढ़ावा देने के लिए अनेक प्रकार के मनोरंजक, सांस्कृति नृत्य एवं संगी के कार्यक्रमों का आयोजन कराती है । हाथी मार्च, नौका दौड़, योग शिविर, पानी के खेल, पतंग उत्सव,आदिवासी मेलें, हस्तशिल्प मेलें,पशु मेलें, लघु उद्योग, शिल्पकला, वास्तु कला,चित्रकारी तथा अनेक प्रकार के खेलों तथा उत्सवों का आयोजन कराती है । इन्हे देखने के लिए हजारों की तादात में देशी तथा विदेश से पर्यटक आते है । इनके आने से न केवल हमारी सांस्कृतिक पहचान बढ़ती है बल्कि हम आर्थिक रूप से भी मजबूत बनते है ।

प्रायः प्रत्येक राज्य में व्यापक सत्तर पर कुछ ऐसे उत्सवों एवं मेलों का आयोजन किया जाता है जो लोगों को अपनी तरफ आकृष्ट करता है । उदाहरण के तौर पर भौजपुरी प्रदेश के सोनपुर का पशु मेला (बिहार), पोंगल (तमिलनाडु), पतंग उत्सव (गुजरात), दुर्गा पूजा (प.बंगाल)। इसके अतिरिक्त दीपावली आदि भी कुछ ऐसे ही उत्सव एवं त्यौहार है जिसे व्यापक स्तर पर मनाया जाता है ।

भाषा की दृष्टि से लोक साहित्य के अध्ययन का महत्व शिष्ट साहित्य जहाँ शब्द शक्ति, रस छंद, अलंकार आदि के कारण दोहरे अर्थ द्योतक होता है वही लोक साहित्य केवल अभिधा प्रधान होता है । इसके वाक्य प्रयोग सहज, सरल तथा बोधगम्य होते हैं । इसमे एकार्थक शब्दों का प्रयोग होता है । लोक साहित्य में कृत्रितमता का नितांत अभाव रहता है, इन गीतों में मधुरता कूट कूटकर भरी रहती है प्रत्येक शब्द का अपना अलग महत्व रहता है । लोक साहित्य प्रायः यह देखा जाता है कि सामान्य जनता की अभिव्यक्ति महत्वपूर्ण होती है अतः इसमे ग्रामीण पदों की बहुलता रहती है । पदावली इतनी गठित एवं सुसज्जित होती है कि एक शब्द को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है । इसमें वर्णन के अनुसार भाषा का प्रयोग किया गया है, अर्थात जैसा सन्दर्भ है वैसी ही भाषा का प्रयोग किया गया है । प्रत्येक शब्द में ग्रामीण जीवन की गहराई है, वेदना है । भी शब्दशक्ति का प्रयोग अर्थ को चमत्कार उत्पन्न करने के लिए नहीं किया जाता है बल्कि अर्थ को भावगम्य बनाने के लिए होता है ।

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि लोक साहित्य समाज का ऐसा ताना-बाना है जिसमें लोग

अपनी समझ बुनते हैं । इसके द्वारा ग्रामीण साहित्य या अप्रचलित साहित्य, असभ्य साहित्य या अनुपयोगी साहित्य मानकर नजरंदाज किया जाता रहा किन्तु बाद में विद्वानों ने इसकी महत्ता को समझ इसे एक सम्मान जनक स्थिति तक पहुंचाया । लोक साहित्य की विशेषता यह है कि इसमें समान्य बोल-चाल की भाषा का प्रयोग होता है । जो भी गीत गाये जाते हैं उसमें हृदय की स्वच्छंद अभिव्यक्ति होती है । इसमे बनावटी थोड़ा भी नहीं होता है । लोक साहित्य का विस्तृत अध्ययन करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि यदि साहित्य का दर्पण है तो लोक साहित्य समाज के अतीत का बोध कराते हुए वर्तमान लोक जीवन को दर्शाता है और भविष्य के लिए दिशा निध ारण करता है । वैज्ञानिकता और फिल्मी धुनों के इस युग में लोगों का आकर्षण लोक साहित्य के प्रति कम हो गया है, अगर ऐसा ही हाल रहा तो आने वाले समय में इसका अस्तित्व,खत्म हो जायेगा, क्योंकि जो लोग पहले इसे बड़े चाव के साथ गुनगुनाते थे वही लोग आज इसे गाने में कतराने लगे हैं । ऐसी स्थिति में इसके अस्तित्व पर खतरा मंडराने लगा है और लोक साहित्य का यह रूप जिसमें कोमल पदावली, सहज तथा सरल भावबोध की बहुलता है, खत्म होने के कागार पर है । अतः जरूरी है कि जितना जल्दी हो सके इन बिखरे साहित्य को एकत्रित कर लिपिबद्ध कर दे ताकि आने वाली पीढ़ी अपने इस संस्कृति से अभिज्ञ न रह सके । लोक साहित्य पर प्रकाशन कार्य अभी बहुत कम हुआ है । लोक साहित्य का व्यापक फलक अभी भी विभिन्न जनपदीय भाषाओं में ही देखने को मिलता है । विविध संस्थानों में इस पर हो रहे शोध कार्यों से निश्चय ही इसने अपने बन्दिशों को तोड़ा है फि भी जिस अनुपात में यह विलुप्त होने की दिशा में आगे बढ़ रहा है वह निश्चय ही विचारणीय है।

-----६----

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लोकसाहित्य की भूमिका, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रा.लि. जीरो रोड, इलाहाबाद संस्करण **1997** पृष्ठ संख्या **54**
2. हिन्दी लोकसाहित्य डॉ. गणेश दत्त सारस्वत पृ.८
3. लोकसाहित्य की भूमिका, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रा.लि. जीरो रोड, इलाहाबाद संस्करण **1997** पृष्ठ संख्या **54**
4. लोक गीतों के सन्दर्भ और आयाम- डॉ. शांति जैन विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी प्रथम संस्करण **1988** इ. पृष्ठ संख्या **236**
5. वही पृष्ठ संख्या **141**
6. लोकसाहित्य की भूमिका, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रा.लि. जीरो रोड, इलाहाबाद संस्करण **1997** पृष्ठ संख्या **141**

7. हरीश हिंदी दिग्दर्शन- डॉ. श्री राम शर्मा, हरीश प्रकाशन मंदिर आगरा, तृतीय संशोधित संस्करण, पृष्ठ संख्या **226**

8. लोक साहित्य के प्रतिमान- डॉ. कुंदन लाल उप्रेती भारत प्रकाशन मंदिर अलीगढ़, तृतीय संस्करण **1999**, पृष्ठ संख्या **214**

9. वही पृष्ठ संख्या **211**

10. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रा.लि. जीरो रोड, इलाहाबाद संस्करण **1997** पृष्ठ संख्या **131**

11. वही पृष्ठ संख्या **136**

सहायक ग्रन्थ सूची

1. भारतीय मेलों एवं उत्सवों दिग्दर्शन- वेद प्रकाश गुप्ता

2. लोक गीतों के सन्दर्भ आयाम, डॉ. शांति जैन विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी प्रथम संस्करण **1988** ई.

3. लोक साहित्यः समीक्षा- डॉ. कृष्ण देव शर्मा, अशोक प्रकाशन नई सड़क, दिल्ली-**5** नवीन संस्करण **1983**

4. लोकसाहित्य की भूमिका डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रा.लि. जीरो रोड, इलाहाबाद संस्करण **1997**

5. लोक साहित्य के प्रतिमान- डॉ. कुंदन लाल उप्रेती भारत प्रकाशन अलीढ़, तृतीय संस्करण, **1999**

6. हरी हिंदी दिग्दर्शन- डॉ. श्री राम शर्मा, हरीश प्रकाशन मंदिर आगरा, तृतीय संशोधित संस्करण,

लोग क्या कहेंगे
(लोक कथा)

✎ प्रो. दिनेश कुमार चौबे

एक समय की बात है । गाँव का एक आदमी बेटे के साथ पशुओं के मेले में अपने गधे को बेचने जा रहा था । दिन चढ़ आया था, धूप तेज थी । कुछ दूर चलने पर चौपाल में कुछ लोग इकट्ठे थे । उनमें से कुछ उत्साही युवक इन्हे देखकर चर्चा करते हुए बोल पड़े, देखो गदहे को लेकर दो मूर्ख जा रहे हैं । लड़का थक गया है, यह नहीं कि बोझ ढोने वाले गदहे पर उसे बैठा दें । यह सुनकर पिता ने बेटे से कहा कि ये लोग ठीक कह रहे है, तुम गदहे पर बैठ जाओ मैं धीर-धीरे साथ में चल रहा हूँ । कुछ दूर जाने पर कुँए पर कुछ युवतियाँ पानी भरते समय इन्हे देखकर बोल पड़ीं । देखो-देखो कैसा बेटा है, खुद गदहे की सवारी कर रहा है और बाप को पैदल चला रहा है । क्या जमाना आ गया है । बड़े-बुजुर्गों की कोई इज्जत नहीं रही । यह सुनकर लड़का गदहे से नीचे उतर गया और बाप को उस पर बैठा दिया । इस तरह कुछ दूरी तय करने पर एक चौराहे पर कुछ लोग जमा दिखाई दिये । इन्हे देखकर उनमें से कुछ बोल पड़े देखो-देखो आजकल मर्म-स्नेह नहीं रह गया । भरी दुपहरी में बाप गदहे की सवारी कर रहा है और बेटे को पैदल चलने पर विवश कर दिया है । यह सुनकर पिता गदहे के साथ पैदल चलने लगे । किन्तु पहले दिये ताने को सुनकर फिर बेटे को पिता ने गधे पर बैठा दिया । कुछ दूर चलने पर एक दुकान पर कुछ लोग जमा थे । गप्प चल रहा था ।उनमें से दो आदमी इन्हे देखकर बोल पड़े । देखो-देखो कैसे मूर्ख हैं ये दोनों, मजबूत गदहे के होने पर भी बाप पैदल चल रहा है केवल बेटे को गदहे पर बैठा रखा है । यह सुनकर बाप भी- बेटे के साथ गधे पर बैठ गया । दोनों गधहे पर बैठकर कुछ दूर चले ही थे कि सामने दूध की टंकी लादे एक ग्वाला दिखाई दिया । ग्वाला इन्हे देखकर जोर से बोल पड़ा ।तुम दोनों में जानवरों के प्रति थोड़ी भी माया-ममता नही रह गई है । बेचारे गदहे की जान ले रहे हो । होना तो यह चाहिए कि तुम दोनों गदहे को पीठ पर बिठाकर बाजार ले जाओ । इस तरह तुम्हे गदहे को बेचकर अच्छी रकम भी मिल जायेगी । यह सुनकर बाप-बेटे गदहे को आगे-पीछे के पैरों को ठीक से बांधकर उसे पीठ पर उठाकर ले चलने लगे । कुछ दूर पूल पर बच्चे नदी में उछलते-कूदते दिखाई दिये ।बाप-बेटे को पीठ पर गदहे को ले जाते हुए देखकर बच्चे शोर मचाना शुरू कर दिये । देखो-देखो दो आदमी गदहे को पीठ पर लादकर कहाँ लिए जा रहे हैं । काफी शोर-गुल मचने पर गदहा अपनी गर्दभ तान हेंपो-हेंपो के साथ ऐसी जम्भाई लिया कि पीछे पैर की बँधी रस्सी खुल गयी और गदहा सीधे पूल से उफनती नदी में जा गिरा। दोनो बाप-बेटे पानी में गदहे को डूबते देखते रह गये । बुजुर्ग जोर-जोर से दहाड़ मारकर रोत-रोते बोल उठा-दस जन की दस बातें जो सुने वही ठगाये। नाहक मैं दूसरों की बातें सुनकर अपनी पूँजी गँवा बैठा ।

इस अंक के लेखक

1. **प्रज्ञा शुक्ला,** वनस्पति शास्त्र विभाग, बी एच यू, वाराणसी।
प्रभाकर सिंह, वनस्पति शास्त्र विभाग, बी एक्ष यू, वाराणसी।
प्रो. अरविन्द कुमार सिंह, प्रोफेसर, बायो केमिस्ट्री विभाग, नेहू, शिलांग-793022

2. **प्रो. भरत प्रसाद,** अध्यक्ष एवं प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, नेहू, शिलांग - 793022

3. **डॉ. अरूण कुमार सिंह,** विधि विभाग, नेहू, शिलांग - 793022

4. **प्रोफेसर उमाशंखर अग्रवाल,** वनस्पति शास्त्र, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, E-mail : arshuma@yahoo-com, Mobile: +91 9436303990

5. **डॉ. आदित्य विक्रम सिंह,** अतिथि प्रवक्ता, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय, विश्वविद्यालय, शिलांग-793022

6. **निर्मला वर्मा,** पीजीटी हिंदी, केन्द्रीय विद्यालय, नेहू, शिलांग-793022

7. **सुनील कुमार,** हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग-793022

8. **एहसिङ खिएवताम्,** शोधार्थी, हिंदी विभाग, नेहू, शिलांग-793022

9. **आलोक सिंह,** शोधार्थी, हिंदी विभाग, नेहू, शिलांग-793022

10. **डॉ. मदन मोहन सिंह,** सहायक आचार्य, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग-793022

11. **अजित कुमार चौबे,** प्रोफेसर, हिंदी विभाग, नेहू, शिलांग-793022

12. **राजेन्द्र कुमार राम,** हिंदी अधिकारी, नेहू, शिलांग-793022

13. **डॉ. अनुराग शर्मा,** अतिथि प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग-793022 (मेघालय)

14. **कुलदीप सिंह,** अतिथि प्राध्यापक, सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक, सिक्किम-626169, मो. न. 8391284912

15. **प्रो. दिनेश कुमार चौबे,** प्रोफेसर, हिंदी विभाग, नेहू, शिलांग-793022